

# इन्द्र भूति गौतम

एक अनुशीलन

लेखक

श्री गणेशमुनि शास्त्री

सम्पादक

श्रीचन्द्र सुराना 'सरस'

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा-२

श्रमण जगवान महावीर की पञ्चवीस-सौ वीं निर्वाण तिथि समारोह के उपलक्ष्य में

# इन्द्रभूति गौतम

एक अनुशीलन

[ 'गणधर इन्द्रभूति गौतम' पर सर्वथा मौलिक, तथा शोधपूर्ण आकलन ]

लेखक : आशीर्वचन

श्री गणेश मुनि शास्त्री उपाध्याय श्री अमर मुनि

•

संपादक : भूमिका

श्रीचन्द्र सुराना 'सरस' डा० जगदीश चन्द्र जैन

एम० ए० पी-एच० डी०

स न्म ति ज्ञा न पी ठ, आ ग रा-२

## सन्मति साहित्य रत्नमाला का ११४ वां रत्न

पुस्तक : इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन	लेखक : श्री गणेश मुनि शास्त्री 'साहित्यरत्न'
सम्पादक : श्रीचन्द सुराना 'सरस'	भूमिका : डॉ० जगदीशचन्द्र जैन एम० ए० पी-एच० डी०
प्रेरक : श्री जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'	प्रकाशक : सन्मति ज्ञान पीठ लोहामण्डी, आगरा
मुद्रक : प्रेम इलेक्ट्रिक प्रेस आगरा	मूल्य : चार रुपये

प्रथम प्रकाश  
अक्टूबर १९७०

# समर्पण



ज्ञान के देवता  
विज्ञान के अध्येता  
तर्कशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित  
मरुधरा के भूषण  
क्रियानिष्ठ  
तपोधन  
महामनीषी  
स्वर्गीय  
आचार्य सम्राट  
श्री अमरसिंह जी महाराज की  
पावन-पुण्य स्मृति में  
सादर  
सविनय  
समर्पण..... !

—गणेश मुनि





## आशीर्वचन

गणधर इन्द्रभूति का महाप्राण व्यक्तित्व श्रमण परम्परा के समग्र गौरव का एक पिंडीभूत रूप है ।

श्रुत महासागर की असीम-अतल गहराई में पैठकर भी सत्य की उत्कट जिज्ञासा, विचारों का अनाग्रह तथा हृदय की विरल-विनम्रता, मधुरता, सरलता का विलक्षण संगम, इन्द्रभूति के जीवन का अद्वितीय रूप है, न सिर्फ श्रमण संस्कृति में, अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में भी !

पच्चीस-सौ वर्ष पूर्व का यह महान् व्यक्तित्व श्रमण-ब्राह्मण परम्परा के बीच सेतु बनकर आया, और सांस्कृतिक-मिलन, धार्मिक-समन्वय एवं वैचारिक-अनाग्रह का मार्ग प्रशस्त करने में सफल हुआ ।

यद्यपि ऐसे असाधारण व कालातीत व्यक्तित्व का आकलन शब्दातीत होता है, फिर भी उसे शब्दानुगम्य बनाने का प्रयत्न युग-युग से होता रहा है । प्रस्तुत में विद्वान लेखक एवं सम्पादक ने इन्द्रभूति के उस महामहिम शब्दातीत रूप को शब्द-गम्य बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है । पुस्तक का सरसरी तौर पर अवलोकन कर जाने पर मुझे लगा है—गौतम के व्यक्तित्व की गहराई को श्रद्धा एवं चिंतन के साथ उभारने का यह प्रयत्न वास्तव में ही प्रशंसनीय है तथा एक बहुत बड़े अभाव की संपूर्ति भी !

ऐसे अनुशीलनात्मक विशिष्ट-ग्रन्थों से पाठकों की ज्ञानवृद्धि के साथ तत्वजिज्ञासा भी परिवृष्ट होगी—ऐसा विश्वास है ।

—उपाध्याय अमर मुनि

## ‘इन्द्रभूति गौतमः’ एक अभिमत

जिस प्रकार ब्रह्म की महिमा को ईश्वर प्रकट करता है, पुरुष की महत्ता प्रकृति दर्शाती है, भगवन्त के ऐश्वर्य को सन्त उजागर करते हैं, उसी प्रकार भगवान महावीर की अनन्त श्री को इन्द्रभूति गौतम ने जाज्वल्यमान किया। और भवज्वाला शान्त करने वाले, दुनिया की आग बुझाने वाले उन गौतम गणधर के दिव्यरूप को यहाँ श्री गणेश मुनि जी ने प्रकाशमान किया है। इस दिव्य ग्रन्थ से जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई है, पाठक इसमें देखेंगे कि धीत-रागता और तज्जन्य समता, शांति और आनन्द जैन धर्म की मूल पृष्ठ भूमि है।

विद्वान लेखक को इस ‘थीसिस’ पर ‘डॉक्टरेट’ मिलनी चाहिये और उन्हें विशेष पद से विभूषित किया जाना चाहिये।

इस अनुपम कृति के उपलक्ष में मैं ज्ञानयोगी श्रीगणेशमुनि जी का तथा सम्पादक बंधु का और उनके भाग्यशाली पाठकों का हादिक अभिनन्दन करता हूँ।

—नारायणप्रसाद जैन  
बम्बई

# प्रकाशकीय

‘साहित्य समाज का दर्पण है’—यह उक्ति पुरानी होते हुए भी सर्वथा सार्थक है। जिस राष्ट्र, समाज एवं परम्परा के पास अपना साहित्य नहीं है, वह अन्य दृष्टियों से भले ही समृद्ध हो, किंतु विचार एवं इतिहास की दृष्टि से तो दरिद्र प्रायः कहे जा सकते हैं। विचार एवं चिन्तन का अक्षय कोष ही सच्ची समृद्धि है और वही साहित्य के रूप में समाज व परम्परा की प्राणप्रतिष्ठा करता है।

सौभाग्य से श्रमण परम्परा को आज साहित्य के रूप में विचार-चिन्तन का अक्षय कोष से प्राप्त है। इतिहास व साहित्य की दृष्टि से उसकी समृद्धि एक गौरवास्पद विषय है। श्रमणसंस्कृति के चिन्तन का सबसे प्राचीन एवं मौलिक संग्रह ‘आगम’ के नाम से विश्रुत है। ‘आगम साहित्य’ ही श्रमण विचारधारा का प्राण कहा जा सकता है, और उस संस्कृति के संपूर्ण वाङ्मय का आदिस्त्रोत भी। ‘आगम’ के अर्थोपदेष्टा तीर्थंकर होते हैं, किंतु उसकी शब्द संयोजना में गणधरों की प्रखर प्रतिभा और अक्षय-श्रुत संपदा का चमत्कार भरा रहता है। इसलिए आगम का मूलाधार तीर्थंकर होते हुए भी ‘गणधर’ के बिना उसकी आपूर्ति संभव नहीं है। इस दृष्टि से हमारे समस्त वाङ्मय के प्राण-प्रतिष्ठापक गणधर ही कहे जा सकते हैं। गणधरों की इस सूची में इन्द्रभूति गौतम का नाम शीर्षस्थ है। आगम साहित्य का अधिकांश भाग आज इन्द्रभूति गौतम की जिज्ञासा और भगवान महावीर के समाधान के रूप में ही है। यदि आगम वाङ्मय में से महावीर-गौतम के संवाद निकाल दिए जाय, तो पता नहीं फिर आगम में क्या बच पायेगा? गौतम महावीर के संवाद जैन वाङ्मय का प्राण कहा जा सकता है। आगमों में गौतम एक व्यक्ति रूप में नहीं, किंतु एक प्रखर जिज्ञासा के रूप में खड़े हैं, और महावीर एक समाधान बनकर उपस्थित होते हैं।



इन्द्रभूति गौतम की देन—केवल श्रुत-संपदा के रूप में ही नहीं, किंतु चारित्रिक सद्गुणों की एक सजीवमूर्ति के रूप में भी है। इन्द्रभूति का व्यक्तित्व इतना विराट और बहुमुखी है कि वह ज्ञान एवं चारित्र्य की सुन्दर तथा सर्वांगीण व्याख्या कहा जा सकता है। ज्ञान एवं विनम्रता, उदग्र तपःसाधना एवं उदार क्षमा, उच्चतम सम्मान तथा स्नेहिल मधुर हृदय, ऐसा दुर्लभ संयोग है जो गौतम के व्यक्तित्व में मणि-कांचन की तरह सुशोभित हो रहा है। ऐसे सार्वभौम व्यक्तित्व का शब्दांकन आज तक नहीं किया गया—यह सखेद आश्चर्य की बात है। किन्तु साथ ही गौरवपूर्ण हर्ष भी है कि अब इस विरल व्यक्तित्व पर एक सुन्दर, सरस साथ ही मौलिक शोधपूर्ण कृति हमारे समक्ष आई है—‘इन्द्रभूति गौतमः एक अनुशीलन’ के रूप में।

‘इन्द्रभूति गौतम’ के लेखक हैं श्री गणेशमुनि जी शास्त्री, जो श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी म० के सुयोग्य शिष्य हैं। श्री गणेश मुनि जी अब तक कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिख चुके हैं, किंतु उन सबमें प्रस्तुत पुस्तक अपना अलग ही स्थान रखती है। इसकी सामग्री, विषय-वस्तु एवं प्रतिपादन शैली सर्वथा मौलिक, शोधपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है। अपने विषय की यह नवीन एवं पहली पुस्तक है। इसकी भाषा बड़ी रोचक, आकर्षक और प्रवाहमयी है। दार्शनिक विषयों को भी बड़ी स्पष्ट एवं सही तुलनात्मक भाषा में सरलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक-लेखक के साथ संपादक श्री श्रीचन्द मुराना ‘सरस’ भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अपनी अनुभव पूर्ण संपादन कला का पूरी तन्मयता के साथ चमत्कार दिखाया है। पुस्तक को प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर एवं परिपूर्ण बनाने में उनका योगदान लेखक एवं प्रकाशक दोनों को प्राप्त हुआ है अतः वे हमारे अपने होते हुए भी कृतज्ञता की पुकार के रूप में हम उन्हें पुनः धन्यवाद देते हैं।

सन्मति ज्ञान पीठ का यह सौभाग्य है कि महामनीषी श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी म० का वरदहस्त प्राप्त हुआ है। उनके निर्देशन में सन्मति ज्ञान पीठ आज पच्चीस वर्ष से निरंतर सत्साहित्य प्रकाशन की दिशा में प्रगति कर रही है। उन्हीं की कृपा से प्रस्तुत पुस्तक हमें प्रकाशन के लिए प्राप्त हुई है।

हमें आशा और विश्वास है कि अन्य प्रकाशनों की भांति प्रस्तुत प्रकाशन भी हमारे पाठकों को रुचिकर एवं ज्ञानवर्धक लगेगा और वे अधिकाधिक संख्या में अपनायेंगे।

जैन भवन

आगरा

३०-९-७०

मंत्री

सन्मति ज्ञान पीठ

## लेखक की कलम से



विश्व के उदयाचल पर कभी-कभार ऐसे विरल व्यक्तित्व उदित होते हैं, जिनमें एक ही साथ धर्म, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता का उर्जस्वल रूप व्यक्त होता है। उनकी वाणी में धर्म और दर्शन आकार लेते हैं, उनके व्यवहार में संस्कृति और सभ्यता का रूप निखरता है। उनका जीवन ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का सजीव शास्त्र होता है। ऐसे महान् व्यक्तित्व प्रधान महापुरुषों का अवतरण आर्य भूमि भारत में सदा से होता रहा है। जिन के विचार-व्यवहार का प्रकाश आज भी धर्म और समाज के अंचलों को आलोकित कर रहा है।

आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, भारत के पूर्वांचल में एक ऐसे ही महा-प्राण व्यक्तित्व का उदय हुआ था जिसके जीवन में समर्पण, साधना, ज्ञान एवं चारित्र्य की चतुर्मुखी धाराएँ एक से एक अग्र-स्रोत बनकर बही। वह महाप्राण व्यक्तित्व दो संस्कृतियों का महासंगम था, और संपूर्ण भारतीय संस्कृति का एक जीता जागता दर्शन था। तीर्थंकर वर्धमान के चरणों में सर्वात्मना समर्पित उस महिमाशाली व्यक्तित्व का नाम था—इन्द्रभूति गौतम !

प्रस्तुत पुस्तक से संदर्भ में भगवान् महावीर के उन्हीं प्रधान अंतेवासी इन्द्रभूति गौतम की चर्चा की गई है। जैन पम्परा के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के जीवन के साथ गणधर गौतम का सम्बन्ध कितना घनिष्ठ रहा है वह आगमों के पृष्ठों का पर्यवेक्षण करने से स्पष्ट परिज्ञात हो जाता है। भगवान् महावीर के दीर्घ चिन्तन को, लोक कल्याणी गिरा को जो आगम का रूप दिया गया है, उसका श्रेय इन्द्रभूति गौतम को है। गौतम का सम्पूर्ण जीवनदर्शन आगम व इतिहास के पृष्ठ-पृष्ठ पर झँक-झलक रहा है, उन्हें एक साथ एक स्थान पर एकत्र कर ले आना संभव नहीं लगता, फिर भी अंतस्थ की भावना को साकार रूप प्रदान करने की दृष्टि से गणधर गौतम के विराट् बहुमुखी एवं सार्वभौमिक व्यक्तित्व का यह छोटा-सा रेखांकन प्रस्तुत किया गया है, एक श्रद्धाञ्जलि के रूप में।

गौतम के व्यक्तित्व का सार्वदेशिक सूक्ष्म चित्रण करने के लिए जैन वाङ्मय के प्रत्येक आगम एवं प्रत्येक ग्रन्थ का आलोडन-अवगाहन करना आवश्यक है। इस

महान् कार्य की सम्पन्नता किसी एक लेखक के द्वारा संभव नहीं है, तथापि हमने प्रयत्न पूर्वक विविध ग्रन्थों का अवलोकन एवं अनुशीलन करके आज तक के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। आशा है यह प्रयत्न पाठकों को रुचिकर व ज्ञानप्रद प्रतीत होगा।

परम श्रद्धेय कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी महाराज का निश्छल मधुर स्नेह बरबस मन-मस्तिष्क में चलचित्र की भांति उद्बुद्ध हो ही जाता है। सन्मति ज्ञान पीठ जैसे सुविश्रुत साहित्यिक प्रतिष्ठान से 'अहिंसा की बोलती मीनारें' के पश्चात् 'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन' मेरे दूसरे ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है, यह उनकी उदारता का फल है। उपाध्याय श्री जी हम जैसे नौ सीखिया साधुओं के लिए साहित्यिक क्षेत्र में सदा पथ प्रदर्शक बने रहे हैं।

महामहिम परमादरणीय श्रद्धेय गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। कारण गुरुदेव श्री का प्रत्यक्ष या परोक्ष में मुझे अनवरत साहित्यिक सहयोग मिलता रहा है। प्रस्तुत दृष्टि से वे मेरे आद्य प्रेरणा-स्रोत कहे जा सकते हैं।

सम्पादनकला मर्मज्ञ श्रीचन्द्र जी सुराना 'सरस' ने प्रस्तुत ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया है। साथ ही ग्रन्थ को मुद्रण कला व आधुनिक साज-सज्जा से सुसज्जित बना दिया है। अतः वे मेरे स्मृति पथ से कदापि विलग नहीं हो सकते।

विद्वद्वर्य डा० जगदीशचन्द्र जैन ने मेरे आग्रह को मान्यकर सुन्दर भूमिका लिखने का जो कष्ट किया है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। अन्त में मैं उन सभी लेखक व विद्वानों का हृदय से आभार मानता हूँ जिनके लेखन से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध लिखने में मुझे केवल सहयोग ही नहीं मिला, बल्कि दृष्टि व मार्गदर्शन भी मिला है।

जेन धर्म स्थानक  
दादर, बम्बई-२८  
संवत्सरी महापर्व  
५-९-७०

—गणेश मुनि शास्त्री  
साहित्यरत्न

भारतीय प्राचीन साहित्य के इतिहास की ओर दृष्टिपात करने से लगता है कि सचमुच भारत के प्राचीन विद्वान लेखक बहुत ही निस्पृह वृत्ति के थे। यशः कीर्ति की उन्हें जरा भी एषणा न थी। इसीलिये वे अपने निज के अथवा अपनी-कृति के सम्बन्ध में परिचय देने की आवश्यकता नहीं समझते। परिणाम यह हुआ कि हम अपने साहित्य के क्रमिक इतिहास का अध्ययन कर उसके मूल्यांकन से वंचित रह गये।

भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध जैसे लोक-विश्रुत तपस्वी लोक नेताओं की जन्म एवं निर्वाण-तिथि के सम्बन्ध में आज भी हमें कितना ऊहापोह करना पड़ता है? और महावीर की निर्वाण भूमि के सम्बन्ध में निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि यह वही मध्यमपावा है जो महावीर-निर्वाण के पूर्व अपापा कही जाती थी, जहाँ काशी—कौशल के गण राजाओं ने एकत्र होकर महावीर-निर्वाणोत्सव उजागर किया था।

ऐसी हालत में यदि गौतम इन्द्रभूति के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध न हो तो आश्चर्य की बात नहीं। प्राचीन जैन ग्रन्थों से उनके सम्बन्ध में हम इतना ही जानते हैं कि वे गौतम गोत्रीय, विहार के अन्तर्गत गोव्वर ग्राम निवासी, भगवान् महावीर के प्रमुख गणधरों में थे। मगध के वे सुप्रसिद्ध विद्वान् ब्राह्मण थे, तथा अग्निभूति और वायुभूति नामक अपने भाइयों के साथ भगवान् महावीर के समवशरण में उपस्थित हो श्रमणों की निर्ग्रन्थ दीक्षा उन्होंने ग्रहण की थी। इन्द्रभूति अत्यन्त जिज्ञासु थे जिसके परिणाम स्वरूप जैन आगमों की वाचना को द्वादशांग का रूप प्राप्त हुआ। भगवान् महावीर के समक्ष उन्होंने अपनी कितनी ही जिज्ञासायें प्रस्तुत कीं, जिनका समाधान महावीर ने बोधगम्य सरल भाषा में किया। वस्तुतः जैन आगमों का अधिकांश भाग गौतम इन्द्रभूति की जिज्ञासा का ही परिणाम समझना चाहिये।

इन्द्रभूति के अनेक संवाद जैन आगमग्रन्थों में उल्लिखित हैं। इनमें उत्तराध्ययन-सूत्र के अन्तर्गत केशी-गौतम नामक संवाद विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है।

पार्श्वनाथ के अनुयायी चतुर्दशपूर्वधारी कुमारश्रमणकेशी ने महावीर के अनुयायी गौतम गणधर से प्रश्न किया कि—क्या कारण है कि पार्श्वनाथ ने सचेल और महावीर ने अचेल धर्म का उपदेश दिया है, जबकि दोनों ही निर्ग्रन्थ परम्परा के अनुयायी हैं। उत्तर में गौतम इन्द्रभूति ने प्रतिपादित किया, कि “यह उपदेश भिन्न-भिन्न रुचि वाले शिष्यों को ध्यान में रखकर किया गया है, वस्तुतः दोनों महातपस्वियों का उद्देश्य ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य द्वारा मोक्ष की प्राप्ति ही है। पार्श्वनाथ के चातुर्यास संवर और महावीर के पंचमहाव्रतों के अन्तर का यही रहस्य है।”

इस संवाद का महत्त्व इसलिये और भी बढ़ जाता है, कि इससे जैन धर्म के सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रोफेसर हर्मन याकोबी की इस मान्यता को समर्थन प्राप्त होता है, कि बौद्ध धर्म के पूर्व भी जैन धर्म विद्यमान था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जब आरम्भ में योरोप के विद्वानों ने जैन धर्म और बौद्ध धर्म का अध्ययन किया, तो श्रमण परम्परा को स्वीकार करने वाले दोनों धर्मों में समानताओं को देखकर योरोप के अनेक विद्वान् जैन और बौद्ध धर्म को एक समझ बैठे, और कुछ तो जैन धर्म को बौद्ध धर्म की शाखा मानने लगे ! जैसे बुद्ध, गौतम बुद्ध कहे जाते थे, वैसे ही इन्द्रभूति भी गौतम इन्द्रभूति के नाम से प्रख्यात थे। इससे भी भ्रान्ति पैदा हो गई थी।

इस भ्रान्त धारणा के निरसन का श्रेय प्रोफेसर याकोबी को प्राप्त है, जिन्होंने जैन सूत्रों की अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना में जैन धर्म का पृथक् अस्तित्व सिद्ध कर जैन पुरातत्व सम्बन्धी खोज को आगे बढ़ाया।

इस दृष्टि से ‘इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन’ महत्वपूर्ण लघु कृति है। यहाँ श्री गणेश मुनि शास्त्री ने इन्द्रभूति के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करते हुए, भारतीय चिन्तन की पृष्ठ भूमि के साथ उनके असाधारण व्यक्तित्व पर विद्वत्ता पूर्ण प्रकाश डाला है। जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के आलोडन पूर्वक सरल भाषा में रची हुई उनकी यह पुस्तक स्वागत के योग्य है।

यह अति प्रसन्नता का विषय है, कि इधर जैन साधु समाज में, विशेषकर स्थानकवासी साधु समाज में, चिन्तन-मनन तथा सामाजिक आन्दोलनों के प्रति विशेष अभिरुचि देखने में आ रही है। जिसका ज्वलंत प्रमाण गणेश मुनि शास्त्री जी का अन्यतम साहित्य के साथ ‘इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन’ है।

हम आशा करते हैं कि लेखक की इस लघु कृति का विद्वत्समाज में सुन्दर समादर होगा।

१२ अक्तूबर, १९७०

जगदीश चन्द्र जैन

# अनुक्रमणिका

खण्ड : पृ० १-२२

सांस्कृतिक अवलोकन ●

खण्ड : २ पृ० २३-३२

भारतीय चिन्तन की पृष्ठ भूमि ●

खण्ड ३ : पृ० ३३-५२

आत्म विचारणा ●

खण्ड ४ : पृ० ५३-१०४

व्यक्तित्व-दर्शन ●

खण्ड ५ : पृ० १०५-१४०

परिसंवाद

परिशिष्ट १४१-१६०



इन्द्रभूति गौतम  
एक  
अनुशीलन





खण्ड : १

## सांस्कृतिक अवलोकन

- जीवन-दर्शन ●
- आर्य इन्द्रभूति ●
- भगवान महावीर को कैवल्य एवं तीर्थ प्रवर्तन ●
- मगध की सांस्कृतिक विरासत ●
- ब्राह्मण क्षत्रिय संघर्ष ●
- आत्मविद्या के पुरस्कर्ता क्षत्रिय ●
- पावा में यज्ञ का आयोजन ●
- गौतम : एक परिचय ●
- पावा में भगवान महावीर ●
- निराशा और जिज्ञासा ●
- समवसरण की ओर ●



## सांस्कृतिक अवलोकन

### जीवन-दर्शन

हिन्दी-साहित्य के जगमगाते ज्योतिर्मय नक्षत्र महाकवि सुमित्रानन्दन पंत ने महा-मानव के जीवन की व्याख्या करते हुए कहा है—महान् व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति का जीवन एक स्वच्छ एवं निर्मल दर्पण-सा होता है। जिसमें राष्ट्र, जाति, समाज एवं धर्म के आदर्श, सांस्कृतिक विरासत, दर्शन एवं चिन्तन की आकृति-प्रतिबिम्बित होती रहती है। उसका जीवन अन्तर के आत्म-प्रकाश, आत्म-ज्योति से ज्योतित होता है। उसके आत्म-आलोक से धर्म, समाज एवं राष्ट्र के अंधकाराच्छन्न कोण आलोकित एवं प्रकाशित हो उठते हैं। उसके हृदय के स्पन्दन में संपूर्ण मानवता की, संपूर्ण विश्व की धड़कन होती है। इसी अभिधा में कवि का स्वर अभिगुञ्जित हो रहा है—

जिसमें हो अन्तर का प्रकाश,  
जिसमें समवेत हृदय स्पन्दन।  
मैं उस जीवन को वाणी दूँ,  
जो नव आदर्शों का दर्पण ॥

विश्व, समाज एवं संघ के उदयाचल पर कभी-कभार ऐसे विरल व्यक्तित्व उदित होते हैं, और अपनी आन्तरिक चमक-दमक की जगमगाहट से विश्व को

आलोकित करते हैं, जिसमें एक ही साथ धर्म, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता का चतुर्मुख रूप अभिव्यक्त होता है, उनकी वाणी में धर्म और दर्शन अवतरित होते हैं और उनके व्यवहार में, आचरण में संस्कृति और सभ्यता का रूप निखरता है तथा विचार और आचार-पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होता है। उनका जीवन केवल जीवन ही नहीं, ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का सजीव शास्त्र होता है।

भारत में ऐसे व्यक्तित्व-सम्पन्न एवं तेजस्वी व्यक्ति समय समय पर अवतरित होते रहे हैं, जिनके विचार और आचार, ज्ञान और क्रिया का दिव्य-प्रकाश आज भी धर्म एवं समाज तथा भारतीय संस्कृति के सभी अंचलों को आलोकित कर रहा है, जन-जन के जीवन को ज्योति से ज्योतित कर रहा है। मर्यादापुरुषोत्तम राम, कर्म योगी श्रीकृष्ण, करुणामूर्ति बुद्ध, और श्रमण भगवान महावीर—ये चार आर्य संस्कृति के दिव्य रत्न हैं, उनके जीवन की रजत-रश्मियों से भारतीय संस्कृति को अपूर्व आलोक मिला है, और उनके जीवन की ऊर्जस्विता ने संस्कृति को प्राणवान बनाए रखा है। जब कभी इन महान् व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्तियों के जीवन का मैं गम्भीरता से अध्ययन करता हूँ तो मुझे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है, कि इनके जीवन के साथ और भी चार तेजस्वी व्यक्तियों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जिन्होंने अपने आपको पूर्णतः समर्पण कर दिया था। जिनकी तेजस्वी श्रद्धा, भक्ति एवं निष्ठा तथा कृतित्वता इनके व्यापक एवं विराट व्यक्तित्व में इस प्रकार समाहित हो गई—‘जाह्नवीया इवार्णवे—जैसे महासागर में गङ्गा की निर्मल धाराएँ’। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन में स्नेह, सेवा और शौर्य की साकार मूर्ति लक्ष्मण, कर्म योगी कृष्ण के जीवन में ‘कर्मण्येवाधिकारस्ते’ का एकनिष्ठ उपासक अर्जुन, करुणाशील तथागत बुद्ध के अनुपदों पर गतिमान सेवा-परायण आनन्द और समतायोगी भगवान महावीर की साधना में ज्ञान के साथ अनन्य गुरु-निष्ठा के मूर्तिरूप इन्द्रभूति गौतम ने अपने आप को विलीन कर दिया था।

साधना के क्षेत्र में व्यक्ति स्वयं अपना विकास कर सकता है। परन्तु साधना को सिद्ध करके उसके प्रकाश को जन-जन के जीवन में प्रसारित करने के लिए जब महान् व्यक्तित्वसम्पन्न व्यक्ति भी समाज में प्रविष्ट होता है, अथवा संघ एवं समाज की स्थापना करता है, तो वह इसके लिए सहयोगी के रूप में तेजस्वी व्यक्तित्व की अपेक्षा रखता है, और यह आवश्यक भी है। क्योंकि सहयोग के बिना कार्य को साकार रूप नहीं दिया जा सकता। ज्ञान की अभिव्यक्ति करने के लिए क्रिया का

सहयोग आवश्यक है। व्यक्ति का आचार ही व्यक्ति के विचार को अभिव्यक्ति दे सकता है। आचार के बिना विचार साकार रूप नहीं ले सकता। इसीप्रकार श्रद्धालु एवं कर्म-निष्ठ व्यक्ति ही महान् तेजस्वी व्यक्तित्व की तेजस्विता को जन-जन के सामने प्रकट कर सकता है। इस बात को हम यों भी कह सकते हैं कि राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर ज्ञान हैं, लक्ष्मण, अर्जुन, आनन्द एवं गौतम कर्म हैं। वे विचार हैं तो ये आचार हैं। इसलिए दोनों में घनिष्ठता एवं एकात्मकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि राम लक्ष्मण के सहयोग से ही वनवास में अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति दे सके, और लंका में राक्षसी-वृत्ति पर विजय पा सके। हम उस जीवन में लक्ष्मण को प्रत्येक कार्य में राम के साथ ही देखते हैं। कर्मयोगी कृष्ण की गीता को, उनके विचारों को आत्मसात् करके उन्हें आचरण में साकार रूप देने वाले अर्जुन को कृष्ण से अलग नहीं किया जा सकता। कृष्ण के विचारों की अभिव्यक्ति रूप अर्जुन परिलक्षित होता है। तथागत बुद्ध के साथ आनन्द का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, कि तथागत अपने विचार एवं चिन्तन को आनन्द के माध्यम से ही जन-जन के समक्ष रखते हैं। और गौतम ने अपने व्यक्तित्व को और अपने आप को महावीर के व्यक्तित्व में इतना मिला दिया था, कि वे स्वयं महावीर से भिन्न समझते ही नहीं थे। जब भी गणधर गौतम के मन में किसी भी तरह की जिज्ञासा जागृत होती, मानस-सागर में कोई विचार उर्मी तरंगित होती, तो वे उसका समाधान अपने चिन्तन की अतल गहराई में उतर कर प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते, बल्कि श्रमण भगवान् महावीर के चरण-कमलों में पहुँच कर प्राप्त करते।

यह तो मैं पूर्व स्पष्ट कर ही चुका हूँ, कि तेजस्वी व्यक्तित्व के तेज को सामान्य व्यक्ति नहीं, तेजस्वी व्यक्ति ही अपने जीवन में आत्मसात् कर सकता है। राम अपने आप में महान् थे, विराट् थे, पर उनकी महानता एवं विराटता को साकार रूप देने का माध्यम लक्ष्मण ही था। लक्ष्मण ने राम की प्रभुता को जन-जन के समक्ष प्रस्तुत किया। अर्जुन का माध्यम पाकर ही कृष्ण की वाणी मुखरित हुई, और गीता का अवतरण हुआ, जो आज भी अलसाये हुए जन मानस को पुरुषार्थ के पथ पर बढ़ने की महान् प्रेरणा प्रदान करता है। तथागत बुद्ध का बोधित्व भी आनन्द का सहयोग पाकर वाणी एवं भाषा के रूप में अभिव्यक्त हुआ। और हमारा आलोच्य विषय इन्द्रभूति गौतम श्री भगवान् महावीर की ज्ञान साधना को अभिव्यक्ति देने का माध्यम रहा है। आगम साहित्य का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि भगवान् महावीर की दिव्य ज्ञान धारा को ग्रहण करने वाला प्रथम

व्यक्ति गौतम ही था। गौतम के दीक्षित होने के पश्चात् ही संघ की स्थापना हुई, और द्वादशांगी को साकार रूप दिया गया। आगम क्या है? गौतम के माध्यम से एवं गौतम की जिज्ञासा का निमित्त पाकर भगवान की प्रवहमान उपदेश धारा! प्रारंभ से अंत तक यह हम देखते हैं, कि आगम का अधिकांश भाग गौतम के जिज्ञासा भरे प्रश्नों के समाधान एवं उनको माध्यम बना कर दिए गए उपदेश से संबद्ध है। भगवान महावीर के जीवन के साथ गौतम का घनिष्ठ सम्बन्ध इस बात से स्पष्ट होता है, कि भगवान महावीर के बाद आचार्यों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में समय-समय पर उठने वाले प्रश्नों एवं उनके समाधानों को महावीर और गौतम के नाम से आगमों के पृष्ठों पर तथा ग्रन्थों में अंकित किए गए हैं।

इस प्रकार गौतम जिज्ञासा थे और महावीर समाधान। और जब तक भगवान महावीर ने सिद्धत्व को प्राप्त नहीं कर लिया, तब तक गौतम जिज्ञासु ही बना रहा। इसलिए भगवान महावीर का निर्वाण गौतम के लिए चिन्ता का कारण बन गया। वह सोचने लगा, कि अब मुझे मेरी जिज्ञासा का समाधान कहाँ मिलेगा? क्योंकि तब तक उसने अपनी जिज्ञासा के समाधान को अपने अन्दर पाने के लिए प्रयास ही नहीं किया था। परन्तु भगवान के निर्वाण के बाद जब अपने आप को परखने का एवं अपनी शक्ति को अनावृत्त करने की ओर ध्यान दिया, तो तुरन्त उसका सुषुप्त जिनत्व जागृत हो गया, उसने अपने आप में महावीरत्व को पा लिया। और अब वह स्वयं जिज्ञासा न रह कर समाधान बन गया। पारस के संपर्क को प्राप्त कर लोहा सोना तो बन जाता है, पर वह पारस नहीं बन पाता। किन्तु महावीर के संपर्क से गौतम ने महावीरत्व को अथवा जिनत्व को प्राप्त कर लिया।

प्रस्तुत संदर्भ से स्पष्ट होता है, कि गौतम का व्यक्तित्व महान्, विराट् एवं तेजस्वी था। उनके व्यक्तित्व में भगवान महावीर के उच्च ज्ञान, जैन दर्शन एवं संस्कृति का हृदय छिपा है। और भगवान महावीर के लोक मंगल व्यक्तित्व का ताना बाना भी जुड़ा हुआ है।

आर्य इन्द्रभूति



आर्य इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के प्रथम शिष्य एवं प्रथम गणधर थे। आगम ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर उनकी चर्चा आई है। अनेक प्रसंग

प्रश्नोत्तर एवं परिसंवाद इन्द्रभूति से सम्बन्धित हैं। भगवती, उववाई, रायपसेणी, पन्नवणा, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि अनेक आगम व आगमों का मुख्य-भाग गणधर इन्द्रभूति के प्रश्नों पर ही निर्मित हुआ है, ऐसा निर्विवाद कहा जा सकता है।

उपनिषद् कालीन उद्दालक के समक्ष जो स्थान श्वेतकेतु का है, गीतोपदेष्टा श्री कृष्ण के समक्ष अर्जुन का एवं बुद्ध के समक्ष आनन्द का जो स्थान है, वही स्थान जैनागमों में भगवान महावीर के समक्ष इन्द्रभूति गौतम का है। आगम-पृष्ठों पर इन्द्रभूति गौतम का जीवन परिचय देने वाली शब्दावली हमें कई रूपों में उपलब्ध होती है। उनके अन्तरंग एवं बाह्य व्यक्तित्व को समग्र रूप से स्पर्श करके संतुलित एवं प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त करनेवाला एक प्रसंग भगवती सूत्र के प्रारम्भ में इस प्रकार आया है।

“उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी-शिष्य इन्द्रभूति नाम के अनगार थे। वे गौतम गोत्री थे। उनका शरीर सात हाथ ऊँचा, समचौरस संस्थान एवं वज्रकृष्णभनाराचसंघयन से युक्त था। उनका गौरवर्ण कसीटी पर खिची हुई स्वर्ण-रेखा के समान दीप्तिमान एवं पद्मकेसर के समान समुज्ज्वल था। वे उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, उदार, घोर, घोर-गुण युक्त, घोरब्रह्मचारी, शरीर की ममता से युक्त, संक्षिप्त (शरीर में गुप्त), विपुल तेजोलेश्या को धारण करने वाले, चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता, चार ज्ञान से सम्पन्न—सर्व अक्षर संयोग के विज्ञाता थे।”

आगम एवं आगमेतर साहित्य में गणधर गौतम का जो भी जीवन परिचय उपलब्ध है, उसमें यह सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वांग परिचय माना जा सकता है। उनका बाह्य दर्शन जितना आकर्षक, सुन्दर, एवं ओजस्वी है, अन्तरंग जीवन परिचय

- तेणं कलेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठेअंतेवासी इंदभूईणामं अणगारे गोयमसगुत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए, वज्जरिसह- नारायसंघयणे, कणय-पुलयनिसहपम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, ओराले, घोरे, घोरगुणे घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, संखित्तविउल तेउलेसे, चोहसपुव्वी, चउनाणोवगए, सव्वक्खर सन्निवाई”.....।

—भगवती सूत्र, शतक—१ पृ० ३३ पं० बेचरदास जी द्वारा सम्पादित।



उससे अधिक तपोपूत, ज्ञानगरिमा-मंडित एवं साधना की चरम कोटि में पहुँचा हुआ है। इस महान् व्यक्तित्व में ऐसी विलक्षणताएँ सन्निहित हुई हैं जिन्हें पढ़ सुन कर हृदय श्रद्धा से गदगद हो उठता है और बुद्धि कह उठती है—पच्चीस सौ वर्ष पूर्व का यह महान् व्यक्तित्व इन ढाई सहस्राब्दियों का अद्भुत एवं एकमेव व्यक्तित्व है। भगवान् महावीर के बाद यदि कोई दूसरा सार्वभौम व्यक्तित्व जैन परम्परा में है तो वह गणधर गौतम का है। भगवती सूत्र के शब्दों की गहराई में जाएँ तो एक-एक शब्द के पीछे गौतम के जीवन की एक नहीं, अनेक विशेषताएँ, साधना की विरल उपलब्धियाँ जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। हम इसी परिचय रेखा के आधार पर इन्द्रभूति गौतम का जीवन परिचय बाह्य एवं अंतरंग व्यक्तित्व का एक विस्तृत जीवन दर्शन पाठकों के समक्ष उपस्थित करना चाहते हैं।

### जैन परम्परा में गणधर



जैन इतिहास एवं परम्परा में 'तीर्थंकर' शब्द जितना प्राचीन एवं अर्थ पूर्ण है, उतना ही प्राचीन एवं अर्थ पूर्ण है 'गणधर' शब्द। 'तीर्थंकर' तीर्थ अर्थात् संघ-साधु, साध्वी श्रावक-श्राविकारूप संघ के निर्माता होते हैं तथा 'श्रुत रूप' ज्ञान परम्परा के पुरस्कृता होते हैं, और गणधर साधु, साध्वीरूप संघ की मर्यादा, व्यवस्था, एवं समाचारी के नियोजक, व्यवस्थापक, तथा तीर्थंकरों की अर्थ रूप वाणी को सूत्र रूप में संकलन करने वाले होते हैं।<sup>१</sup>

विशेषावश्यक भाष्य के टीकाकार आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र के शब्दों में 'उत्तम ज्ञान दर्शन आदि गुणों को धारण करने वाले गणधर होते हैं।' <sup>१३</sup>

समवायांग सूत्र<sup>२</sup> तथा कल्पसूत्र स्थविरावली<sup>३</sup> प्रवचन सारोद्धार<sup>४</sup> में चौबीस

२. अत्थं भासई अरहा सुत्तं गुंफइ गणहरा निउणा ।

—आचार्य भद्रबाहु

३. अनुत्तरज्ञानदर्शनादि गुणानां गणं धारयन्तीति गणधरा :—

—विशे० भा० टीका० गा० १०६२ ।

४. समवायांग सूत्र ११-७४

५. कल्पसूत्र (कल्पलता) पृ० २१५

६. प्रवचन सारोद्धार द्वार १५ गा ४७-५८.

तीर्थंकरों के विभिन्न गणों एवं गणधरों की नामावली प्राप्त होती है। जिससे यह जाना जा सकता है कि प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में गणधर एक अत्यावश्यक उत्तर-दायित्व पूर्ण महान प्रभावशाली व्यक्तित्व होता है।

समवायांग सूत्र में बताया है—श्रमण भगवान महावीर के ग्यारह गण एवं ग्यारह गणधर थे।<sup>७</sup>

कल्पसूत्र में नौ गण एवं ग्यारह गणधर बताये हैं,<sup>८</sup> तथा प्रत्येक गणधर के नाम, गोत्र, शिष्य, परिवार आदि का विस्तृत लेखा जोखा भी दिया गया है। उनकी योग्यता, ज्ञान-क्षमता एवं साधना तथा निर्वाण भूमि का परिचय भी उससे प्राप्त हो जाता है। आवश्यक नियुक्ति में आचार्य भद्रबाहु ने गणधरों का संक्षिप्त परिचय देते हुए निम्न विवरण दिया है।<sup>९</sup>

इन्द्रभूति, वायुभूति एवं अग्निभूति—ये तीन गणधर मगध जनपद के गोबर ग्राम में जन्में, तीनों गौतमगोत्री थे। व्यक्त एवं सुधर्मा गणधर का जन्म स्थल कोल्लाग सन्निवेश तथा क्रमशः भारद्वाज एवं अग्निवेश्यायन गोत्र के थे। मंडित तथा मोर्यपुत्र मोर्यसन्निवेश में, एवं अचल गणधर कौशला तथा अकंपित का जन्म मिथिला में हुआ। इनके गोत्र क्रमशः वशिष्ठ, काश्यप, गौतम एवं हारीत थे। मेतार्य गणधर का जन्म वत्स भूमि (कोशांबी) का तुंगिक सन्निवेश में और प्रभास गणधर का जन्म

७. समणस्सणं भगवओ महावीरस्स एक्कारसगणा एक्कारस गणहरा होत्था—  
तं जहा—इन्द्रभूई, अग्निभूई.....सम० स० ११

८. समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा एक्कारस गणहरा होत्था—  
—कल्पसूत्र (स्थविरावली) सूत्र २०१

९. मगहा गोव्वर गामे जाया तिण्णोव गोयमस गोत्ता ।  
कोल्लागसन्निवेसे जाओ विअत्तो सुहम्मो य । ६४३ ।  
मोरिय सन्निवेसे दो भायरो मंडमोरिया जाया ।  
अचलोय कोसलाए मिहिलाए अकंपियो जाओ । ६४४ ।  
तुंगिय सन्निवेसे मेयज्जो वच्छभूमिए जाओ ।  
भगवं पियप्पभासो रायगिहे गणहरो जाओ । ६४५ ।  
तिण्णिय गोयम गोत्ता भारद्वा अग्निवेस वासिट्ठा ।  
कासवगोयम-हारिय-कोडिण्ण दुगं च गोत्ताई । ६४९ ।

—आवश्यक नियुक्ति

राजगृह में हुआ। ये दोनों ही कौडिन्य गोत्रिय थे। लगभग इसी विवरण को आचार्य हेमचन्द्र<sup>१०</sup>, गुणचन्द्र<sup>११</sup> एवं नेमिचन्द्र आदि उत्तरवर्ती जीवन-चरित्र लेखकों ने दुहराया है। गणधरों के सम्बन्ध में सार रूप जानकारी परिशिष्टगत कोष्टक से भी ज्ञात हो जाती है। विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता है।

### भगवान महावीर : कंवत्य और तीर्थ प्रवर्तन



भगवान महावीर इस अवसर्पिणी के चौबीसवें तथा अन्तिम तीर्थंकर थे। तीस वर्ष की युवावस्था में राज्यवैभव एवं अपार भोगसामग्री को ठुकराकर निर्ग्रन्थ भिक्षु बन गये और कठोर एकांत आत्म साधना में लगभग बारह वर्ष छह मास तक संलग्न रहे। इस कठोर साधना काल में उन्होंने अपने को तपाया, दुःसह कष्टों को सहन किया, और आधिभौतिक एवं आधिदैविक घोर उपसर्गों के झंझावात में भी अचल हिमाचल की भांति साधना का निष्कंप दीप जलाते रहे।<sup>१२</sup>

एक समय भगवान महावीर साधना काल के अन्तिम वर्ष में ग्रीष्म ऋतु के वैशाख महीने में विहार करते हुये जम्भिया ग्राम के बाहर ऋजु बालिका नदी के उत्तर किनारे पर श्यामाक नामक गाथापति के कृषि भूमि (खेत) में पधारे। वहाँ शाल नामक वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन में बैठ कर परम समाधि पूर्वक ध्यान की उच्च भूमिका में पहुँच रहे थे। उनके राग-द्वेष क्षीण हो चुके थे। वे मोह पर विजय प्राप्त कर चुके थे। शुक्ल ध्यान की विशुद्धतर भूमिका पर पहुँचते ही श्रमण महावीर ने केवल ज्ञान केवल दर्शन का अनन्त आलोक प्राप्त किया।<sup>१३</sup> यह वैशाखशुक्ल दशमी का दिन इस अवसर्पिणी के अन्तिम तीर्थंकर श्रमण महावीर के

१०. त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित, पर्व १० सर्ग ५
११. महावीर चरित्रं, प्रस्ताव, ८.
१२. विशेष विवरण देखिए—(क) तीर्थंकर महावीर (विजयेन्द्रसूरि) भा० १ (ख) आगम और त्रिपिटिक : एक अनुशीलन (मुनि नगराजजी)
१३. (क) आचारांग २।२४।१०२४  
(ख) आवश्यक नियुक्ति :  
(ग) विशेषावश्यक भाष्य गा० ५२६ प्र० मा० पृ० ६०८  
(घ) महापुराणे उत्तर पुराण ७४।३४८-३५५

कैवल्य महोत्सव का पवित्र दिन था। भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्त होते ही एक बार अपूर्व प्रकाश से सारा संसार जगमगा उठा। दिशाएँ शांत एवं विशुद्ध हो गईं थीं, मन्द-मन्द सुखकर पवन चलने लगी, देवताओं के आसन चलित हुए और वे दिव्य देव दुन्दुभि का गम्भीर घोष करते हुए भगवान का कैवल्य महोत्सव करने पृथ्वी पर आये।<sup>१४</sup> भगवान महावीर जंगल में थे, अतः केवल ज्ञान प्राप्त होते ही उनकी प्रथम प्रवचन सभा में कोई मनुष्य नहीं पहुँच सका। देवों का अगणित समूह उनकी वैराग्य-पीयूष-वर्षा वाणी से गदगद अवश्य हो उठा; पर व्रत और संयम स्वीकार करके महावीर की प्रथम देशना की सफलता सिद्ध करना देवों के लिये असंभव था। इस दृष्टि से भगवान महावीर का प्रथम प्रवचन निष्फल गया ऐसा भी कहा जाता है।<sup>१५</sup> जूम्भिया ग्राम से विहार कर श्रमण भगवान महावीर पावापुरी (मध्यम पावा) पधारे। पावा मगध की प्रमुख सांस्कृतिक नगरी थी।

### मगध की सांस्कृतिक विरासत



भारत के आध्यत्मिक इतिहास में मगध का स्थान सर्वोपरि रहा है। मगध की संस्कृति में श्रमण संस्कृति के बीज प्रारम्भ से ही पलते रहे हैं। श्रमण संस्कृति के विकास एवं प्रसार में मगध का अपूर्व योग रहा है। म० महावीर तथागत बुद्ध एवं इन्द्रभूति गौतम जैसे आध्यात्मिक व्यक्तित्व मगध भूमि के गौरव की शाश्वत स्मृतियाँ हैं। जिसप्रकार भारतीय शासन में गणतंत्र का विकास एवं प्रयोग सर्वप्रथम मगध के अंचल में हुआ, उसीप्रकार भारतीय धर्म दर्शन तथा अध्यात्म क्षेत्र में, वैराग्य, सन्यास अहिंसा, मोक्ष विचार आदि की विकास भूमि भी मगध जनपद (मगध से सम्पूर्ण पूर्व भारत की भावना लेनी चाहिए) एवं उसके पारिपाश्विक अंचल रहे हैं। मगध की यह सांस्कृतिक विरासत आज भी भारतीय जन जीवन के उदात्त

१४. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्रम्—पर्व १०, सर्ग ५,

नोट—भगवान महावीर के कैवल्य वर्णन की तुलना में बौद्धों ने बुद्ध के बोधि लाभ का आलंकारिक वर्णन किया है। जातकअट्ठकथा (निदान) में कहा है— बुद्ध ने जब बोधि लाभ प्राप्त किया तब चौरासी हजार योजन गहराई तक समुद्र का पानी मीठा हो गया। जन्मांध देखने लगे, जन्म के बहरे सुनने लगे।”

१५. स्थानांग १०।३।७७७

चिंतन एवं ऊर्ध्वमुखी विकास की कहानी प्रस्तुत कर रही है।<sup>११</sup> मगध जनपद की दो नगरियां पावा पुरी एवं राजगृही (मगध) उन दिनों सांस्कृतिक एवं धार्मिक जागरण का केन्द्र बनी हुई थी। उत्तर भारत से आये हुये आर्य पूर्व भारत में बस कर नई धार्मिक चेतना के अग्रणी बन रहे थे। क्षत्रिय, जो कि मुख्यतः श्रमण परम्परा के अनुयायी थे, इनमें प्रमुख थे, और वे यज्ञवाद, बहुदेववाद एवं जातिवाद के विरोध में खुलकर अहिंसा, जातिप्रतिरोध एवं धार्मिक समानता का प्रचार कर रहे थे।<sup>१२</sup>

### ब्राह्मण क्षत्रिय संघर्ष

उस युग में मुख्यतः वैदिक एवं अवैदिक इस प्रकार के दो वर्ग स्पष्ट रूप से सामने आ रहे थे। यज्ञ का प्रतिरोध करने वाले चाहें वे श्रमण रहे हों या ब्राह्मण, अवैदिक माने जाते थे। यही कारण है कि सांख्य-दर्शन जो ब्राह्मण परम्परा की देन था उसे यज्ञ का प्रतिरोध करने के कारण कुछ लोग अवैदिक एवं श्रमण परम्परा की श्रेणी में मानने लगे थे।

यज्ञ प्रतिरोध के साथ ही जातिवाद का विरोध एवं उसकी अतात्त्विकता की भावना अवैदिक परम्परा में प्रबल रूप से फैल चुकी थी। ऋग्वेद के अनुसार— ब्राह्मण, प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुआ, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य उदर से एवं शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुआ।<sup>१३</sup> श्रमण परम्परा इस सिद्धान्त का कट्टर विरोध करके उसकी अतात्त्विकता सिद्ध कर रही थी। तथागत गौतम बुद्ध मनुष्य जाति की एकता का प्रतिपादन बहुत ही प्रभावशाली पद्धति से करते थे। वे जन्मना जाति के स्थान पर कर्मणा जाति के समर्थक थे।<sup>१४</sup> धीरे-धीरे इस विचार का प्रभाव उन क्षत्रियों पर भी पड़ा जो वैदिक परम्परा से सम्बद्ध थे। इसका प्रमाण महाभारत में मिलता है।<sup>१५</sup> वे भी आचरण से ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता का उद्घोष करने लगे। वैदिक विचार धारा के साथ संघर्ष का तीसरा प्रधान कारण था समत्व भावना व धार्मिक

१६. विशेष वर्णन के लिए देखें 'संस्कृति के चार अध्याय' २ (रामधारीसिंह दिनकर)

१७. देखिए—भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास।

(डा० वि० सी० पाण्डे) पृ० २३-२४

१८. ऋग्वेद मं० १० अ० ७ सू० ९१, मं० १२

१९. सुत्तनिपात (वासेट्टु सुत्त)

२०. महाभारत शांति पर्व २४५।११-१४

समानता। वैदिक परम्परा ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता को चरमकोटि पर पहुँचा कर अन्य वर्गों को उससे निम्न एवं धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा। आरण्यक कों एवं ब्राह्मणों ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता के डिडिमनाद में यहाँ तक कह डाला—समस्त देवता ब्राह्मण में निवास करते हैं।<sup>११</sup> वह विश्व का दिव्य वर्ण है।<sup>१२</sup> ब्राह्मण का जातीय अहंकार आकाश को चूमने लगा तो धीरे-धीरे अन्य वर्गों में उसके प्रति विद्वेष एवं विरोध की आग सुलगने लगी। क्षत्रिय वर्ग ने उसकी श्रेष्ठता को चुनौती दी।<sup>१३</sup> उन्होंने कहा—श्रमण अपने गोत्र कुल आदि का अभिमान नहीं करता।<sup>१४</sup> वह सदा समता से युक्त रह कर सब में समत्व दर्शन करता है।<sup>१५</sup>

ब्राह्मण की श्रेष्ठता के दो आधार स्तंभ थे। एक याज्ञिक कर्मों में उसकी अनिवार्यता तथा दो—ज्ञान में श्रेष्ठता। सत्ता के इन दोनों उद्गमों पर क्षत्रियों ने कड़ा प्रहार किया, याज्ञिक कर्मों का प्रतिरोध करके, एवं आत्मविद्या में अग्रगामी बन कर।<sup>१६</sup>

### आत्मविद्या के पुरस्कर्त्ता

इतिहास में इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि—भगवान महावीर से पूर्व भी मगध में अनेक क्षत्रिय राजा एवं राजकुमार तत्त्व ज्ञान, आत्मविद्या आदि गम्भीर विषयों के उपदेष्टा एवं प्रचारक रहे हैं। अनेक ब्राह्मण कुमार तथा ऋषिजन इन राजाओं के पास आकर आत्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करते आये हैं। कुछ विचारकों का मत है, भारतवर्ष में आत्मविद्या के पुरस्कर्त्ता क्षत्रिय ही रहे हैं।<sup>१७</sup> विदेहराज जनक स्वयं वेदों तथा उपनिषद् के गम्भीर विद्वान् थे।<sup>१८</sup> कँकेय नरेश अश्वपति के पास

२१. एते वै देवाः प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मणाः —तैत्तिरीय संहिता १-७-३१

२२. दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः । —तैत्तिरीय ब्राह्मण १, २, ६

२३. शतपथ ब्राह्मण १४, १, २३

२४. सूत्रकृतांग १। २। १। १

२५. सुत्तनिपात २३। ११

२६. भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास पृ० २५

२७. आत्म विद्या के पुरस्कर्त्ता क्षत्रिय ही थे—इसके प्रमाण में देखें 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन,' (मुनि नथमल) पृ० १४।

अनेक ब्राह्मण कुमारों के विद्याध्ययन का उल्लेख भी छांदोग्य उपनिषद् में मिलता है ।<sup>१९</sup> श्वेतकेतु आरुरोय, जैसे लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् ऋषि ने भी प्रवाहणजैवल, जो कि क्षत्रिय कुमार थे, उनके पास वेदों व आत्मविद्या का ज्ञानप्राप्त किया ।<sup>२०</sup> ये उल्लेख सूचित करते हैं कि—उत्तर भारत में जहाँ धार्मिक क्रियाकाण्डों, विधि—विधानों, एवं तत्त्वज्ञान आदि का केन्द्र एवं नियोजक ब्राह्मण वर्ग रहा, वहाँ पूर्व भारत में धीरे-धीरे राजसत्ता के साथ धार्मिकसत्ता भी क्षत्रियों के हाथ में आती गई । क्षत्रियों ने आत्मविद्या पर बल दिया और यज्ञों के विरोध में स्पष्ट कहा जाने लगा “प्लवाः ह्येते अदृष्टाः यज्ञ रूपाः” ये यज्ञ आदि कर्म कमजोर नाव के समान हैं—इन से संसार सागर नहीं तिरा जा सकता । श्रेय और प्रेय का भेद बता कर — “अन्यच्छ्रेयो अन्यदुतैव प्रेयस्”<sup>२१</sup> श्रेय-आत्महित, आत्मविद्या की साधना करने वाले को धीर, बुद्धिमान एवं प्रेय—भौतिक-सुख समृद्धि, यज्ञ यागादि क्रिया काण्ड में पड़े रहने वाले को मंद (मूर्ख) कहा जाने लगा ।<sup>२२</sup> उपनिषद् में मुखरित होने वाले ये स्वर निश्चित ही दो विचार धाराओं के संघर्षों की सूचना देते हैं । और ये विचार धारायें वैदिक एवं वेद विरोधी श्रमण धारायें ही रही होंगी । ऐसा पूर्व उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है ।

### पावा में यज्ञ का आयोजन



पच्चीस सौ वर्ष पूर्व पूर्वी भारत का धार्मिक इतिहास पढ़ने पर यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इन दोनों विचार धाराओं में उस समय काफी उथल-पुथल मची हुई थी । ब्राह्मण सत्ता को चुनौती दी जाने पर स्थान-स्थान पर उस वर्ग की ओर से इस प्रकार के विद्वाद् सम्मेलन एवं महायज्ञों की रचना होना भी आवश्यक हो गया था जिसमें उत्पन्न परिस्थितियों पर विचार किया जाय एवं बिखरते हुए

२८. बृहदारण्यक उपनिषद् ४।२।१।

२९. छांदोग्य उपनिषद् ५।११

३०. छांदोग्य उपनिषद् ५।३

३१. कठोपनिषद् २।१

३२. श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतद् तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः ।

श्रेयोहि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयान्मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।

—कठोपनिषद् २।२

प्रभुत्व को पुनः स्थिर करने के लिए कोई स्थाई उपाय सोचा जाय । परिस्थितियों के अध्ययन से एवं ग्रन्थों में प्राप्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि आर्य सोमिल जो मगध का एक धनाढ्य एवं विद्वान् ब्राह्मण था, ब्राह्मण वर्ग का नेतृत्व भी उसके हाथ में था और पूरे मगध एवं पूर्व भारत में उसकी प्रतिष्ठा भी थी । पावापुरी में उसने एक विराट महायज्ञ का आयोजन किया । जिसमें पूर्व भारत के बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों को उनके हजारों शिष्य परिवार के साथ निमन्त्रित किया गया । सम्भवतः इस महा-यज्ञ के अवसर पर वेद विरोधी विचारधारा के कड़े प्रतिवाद के उपायों पर एवं साधारण जनता को पुनः वैदिक विचारों की ओर आकृष्ट करने के साधनों पर भी विचार करने की योजना बनी होगी । इस सम्पूर्ण महायज्ञ का नेतृत्व मगध के प्रसिद्ध विद्वान् प्रकाण्ड तर्कशास्त्री 'इन्द्रभूति गौतम' कर रहे थे । अन्य अनेक विद्वानों के साथ अग्निभूति, वायुभूति आदि म्यारह महापण्डित भी वहाँ उपस्थित थे ।

### गौतम : एक परिचय



इन्द्रभूति गौतम का जन्म स्थल था मगध का एक छोटा-सा गोबर ग्राम ।<sup>३३</sup> उनकी माता का नाम पृथ्वी, एवं पिता का नाम वसुभूति था । उनका गोत्र गौतम था ।

गौतम का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ करते हुए जैनाचार्यों ने लिखा है—“गोभिस्तमो ध्वस्तं यस्य”<sup>३४</sup> बुद्धि के द्वारा जिसका अन्धकार नष्ट हो गया है वह—गौतम । वैसे 'गौतम' शब्द कुल एवं वंश का वाचक रहा है । स्थानांग में सात प्रकार के गौतम बताए गए हैं ।<sup>३५</sup> गर्ग, भारद्वाज, आंगिरस आदि । वैदिक साहित्य में गौतम नाम कुल से भी सम्बद्ध रहा है और ऋषियों से भी । ऋग्वेद में गौतम के नाम से अनेक सूक्त मिलते हैं, जो गौतम राहूगण नामक ऋषि से सम्बद्ध हैं ।<sup>३६</sup> वैसे गौतम नाम से अनेक ऋषि, धर्म सूत्रकार, न्याय शास्त्रकार, धर्म शास्त्रकार आदि व्यक्ति हो चुके हैं

३३. मगहा गोव्वरगामे.....आवश्यक नियुक्ति गा. ६४३. ६५६

३४. अभिधान राजेन्द्र कोश भा. ३ गौतम शब्द

३५. स्थानांग ७

३६. ऋग्वेद १. ६२. १३. (वैदिक कोश पृ० १३४)



अरुणउद्दालक, आरुणि आदि ऋषियों का भी पतृक नाम गौतम था ।<sup>३७</sup> यह कहना कठिन है कि इन्द्रभूति गौतम का गोत्र क्या था, वे किस ऋषि वंश से सम्बद्ध थे ? पर इतना तो स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व बहुत विराट् एवं प्रभावशाली था । दूर-दूर तक उनकी विद्वत्ता की धाक थी । पांच सौ छात्र उनके पास अध्ययन करने के लिए रहते थे । उनके व्यापक प्रभाव के कारण ही सोमिलार्य ने इस महायज्ञ का धार्मिक नेतृत्व इन्द्रभूति के हाथ में सौंप दिया था । विभिन्न जनपदों से हजारों विद्वान, ब्रह्मकुमार उस महायज्ञ में भाग लेने आए थे । मगध जनपद के हजारों नागरिक दूर-दूर से इस यज्ञ की ख्याति सुनकर देखने को उपस्थित हुए थे ।

### पावापुरी में भगवान महावीर



भगवान महावीर केवल ज्ञान प्राप्त कर जब पावापुरी में पधारे तो हजारों नरनारी उनकी धर्म देशना सुनने को उमड़ पड़े । देवताओं ने समवशरण की रचना की । आकाश में भगवान महावीर की जयजयकार करते हुए असंख्य देव, विमानों से पुष्प वर्षाते हुए समवशरण की ओर आने लगे ।

### निराशा और जिज्ञासा



यज्ञवाटिका में बैठे हुए विद्वानों ने आकाशमार्ग से आते हुए देवगण को देखा तो रोमांचित होकर कहने लगे “देखिए, यज्ञ माहात्म्य से आकृष्ट होकर आहुति लेने के लिए देवगण भी आ रहे हैं ।” हजारों लाखों आँखें आकाश की ओर टकटको लगाए देखती रहीं । पर जब देव विमान यज्ञ मण्डप के ऊपर से सीधे ही आगे निकल गये तो एक भारी निराशा से सबकी आँखें नीचे झुक गयीं, मुख मलिन हो गये, और आश्चर्य के साथ सोचने लगे—“यह क्या है ? क्या देवगण भी किसी की माया में फँस गए हैं ? या भ्रम में पड़ गए हैं ? यज्ञमण्डप को छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ?” इन्द्रभूति ने देखा—यह तो उनके साथ मजाक हो रहा है । देवविमानों को देखकर उन्होंने ही तो यज्ञ की महिमा से मण्डप को गुंजाया था और अब उन्हीं के अहंकार

पर चोट करते हुए ये विमान सीधे आगे निकल गये । आर्य सोमिल से पूछा—‘आर्य, आज पावापुरी में कौन आया है ?

आर्य सोमिल—“आपने नहीं सुना ?”

इन्द्रभूति—‘नहीं ।’

सोमिल—क्षत्रिय कुमार वर्धमान । लगभग तेरह वर्ष पूर्व इन्होंने गृह त्यागकर प्रवज्या ग्रहण की थी । राजकुमार अवस्था में ही ये वर्णाश्रम, एवं यज्ञविरोधी विचारों को प्रोत्साहित करने में अग्रणी रहे हैं । अनेक राजन्‍यों एवं शासकों को इन्होंने अपने प्रभाव में लिया है । और अब तपस्या के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर पावापुरी में आकर अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में यह विशाल आडम्बर कर रहे हैं । असंख्य देवताओं को भी उन्होंने अपने वश में कर लिया है ।

इन्द्रभूति—अच्छा ! वेद विरोध ! वर्णाश्रम विरोध ! यज्ञ निषेध ! और इसके लिए इतना संगठित व बलशाली-आन्दोलन । अच्छा, देखता हूँ मैं क्या शक्ति है वर्धमान में ! जो हमारे विरोध के समक्ष डट सके । आर्य सोमिल ! लगता है वर्धमान ने कुछ तपस्या करके ऐन्द्रजालिक सिद्धियाँ प्राप्त की हैं । जनता को भ्रम एवं मायाजाल में डाल रहा है । पर यह अन्धकार कब तक ? जब तक इन्द्रभूति के आजस्व-वर्चस्व का प्रभाव पूर्ण सहस्रांशु वहाँ पहुँच न जाय ।

सोमिल—हाँ, सत्य है आर्य ! श्रमण वर्धमान की उठती हुई शक्ति का प्रति-रोध करना ही होगा । नदी के बहाव को प्रारम्भ में ही मोड़ देना चाहिए अन्यथा वह बल पकड़ लेता है । श्रमण वर्धमान के पीछे अनेक क्षत्रिय शासकों का पृष्ठ बल है । वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक जो प्रारम्भ से ही हमारी वैदिक परम्परा के विरोधी रहे हैं, वर्धमान के मातुल है । मगध, वैशाली, कपिलवस्तु आदि अनेक जन पदों में वेद विरोधी विचारों का तूफान उठ रहा है ।<sup>३८</sup> और इधर श्रमण वर्धमान भी केवल्य प्राप्त करके पावा में आ चुके हैं । सहस्रों देवगण भी इनके उपदेश सुनने

३८. भगवान महावीर के लगभग १० वर्ष पश्चात् बुद्ध ने बोधिलाभ प्राप्त किया । जब भगवान महावीर को केवल्य हुआ तब बुद्ध को तपस्या करते हुए ३ वर्ष हो चुके थे । बुद्ध के गृह त्याग की मगध में काफी हलचल थी :—देखिए आगम और त्रिपिटकः एक अनुशीलन—पृ० ११७

सभा की ओर दौड़े जा रहे हैं। विद्वद्वयं ! जिस स्थिति पर विचार करने के लिए हमने इस महायज्ञ का आयोजन किया था उस स्थिति की उग्रता आज हमारे समक्ष स्पष्ट हो रही है। और हमारे इस आयोजन को प्रभावहीन करने के लिए ही श्रमण वर्धमान पावापुरी में आकर विराट् धर्म सभा कर रहे हैं।

इन्द्रभूति :—आर्य सोमिल ! हम इस बढ़ती हुई धर्म विरोधी भावना का प्रतिरोध करेंगे। जब तक इन्द्रभूति जैसा विद्वान् आपके समक्ष विद्यमान है इस आयोजन को कोई प्रभावहीन नहीं कर सकता। मैं स्वयं वर्धमान से शास्त्रार्थ करूँगा, उन्हें पराजित करके अपना शिष्य बनाऊँगा और देखते ही देखते वैदिक धर्म की वंजयन्ती आकाश मण्डप को चूमने लगेगी।

इन्द्रभूति के कथन पर आर्य सोमिल के साथ हजारों विद्वानों, छात्रों एवं जनता ने—“अखण्ड भूमण्डल वादि-चक्रवर्ती आर्य इन्द्रभूति की जय” नाद से यज्ञ-मण्डप को गुँजा दिया।

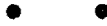
इन्द्रभूति का मन अहंकार व धर्मोन्माद से मचल उठा था। वे श्रमण वर्धमान को पराजित करने के लिए जनता के समक्ष कृतसंकल्प हुए।

## समवशरण की ओर



इन्द्रभूति का पांडित्य अद्वितीय था, वेद एवं उपनिषद् का ज्ञान उनकी चेतना के कणकण में छाया हुआ था। समस्त दर्शन, न्याय, तर्क, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि की सूक्ष्मतम गुत्थियाँ सुलझाना उनके बाएं हाथ का खेल था। ज्ञान के साथ जिज्ञासा वृत्ति उनकी अपूर्व विशिष्टता थी। आर्यसोमिल की प्रेरणा, विद्वानों की प्रशंसा एवं धर्मोन्माद के कारण वे श्रमण वर्धमान से वादविवाद करने चल पड़े। किन्तु इन सब बातों के साथ ही साथ एक गूढ़ प्रश्न, अनवृक्ष जिज्ञासा उनके मन को उद्बेलित कर रही थी और वही उनको खींच रही थी। श्रमण वर्धमान का प्रभाव और उनकी सर्वज्ञता की बात उन्होंने अपने कानों से सुनी, असंख्य-असंख्य देव विमानों को उनकी धर्मसभा में जाते आँखों से देखा, तो उनकी विद्वत्ता का अहंकार भीतर ही भीतर सिहर उठा। उनका मन श्रमण वर्धमान के प्रति खिंचने लगा। एक-विचित्र आकर्षण उनके मन में जगा। अनुभव हुआ—जैसे उनका अंतरंग श्रमण वर्धमान की ओर खिंचा जा रहा है। जो समाधान आज तक नहीं मिला, वह वहाँ मिल सकता है।

जो प्रश्न आज तक अनछूए रहे, उनका निराकरण वहाँ हो सकता है। इन्द्रभूति का मन भीतर-ही-भीतर आन्दोलित होने लगा और वे अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ यज्ञ विधि को सम्पन्न करने से पूर्व ही भगवान महावीर के समवरण महसेन वन की ओर बढ़ गये।<sup>३९</sup>




---

३९. दिगम्बर आचार्य गुणचन्द्र के मंतव्यानुसार इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के समवरण में स्वतः प्रेरित होकर नहीं, किन्तु सौधमेन्द्र के द्वारा कि “तुम वहाँ जाकर अपने संशय का निराकरण करो” इस प्रकार प्रेरणा करके लाये जाते हैं—

“दृष्ट्वाकेनाप्युपायेन समानीयान्तिकं विभोः,”

—महा० उत्तर ४७।३५९



खण्ड : २

## भारतीय चिन्तन की पृष्ठभूमि

•

- इन्द्रभूति का संशय●
- जटिल प्रश्न●
- विविध मत●
- देहात्मवाद●
- इन्द्रियात्म वाद●
- मनोमय आत्मा●
- प्रज्ञानात्मा●
- चिदात्मा●
- इन्द्रभूति की बेचैनी●



## भारतीय चिन्तन की पृष्ठभूमि

### इन्द्रभूति का संशय

इन्द्रभूति गौतम अपने युग के, अपनी परंपरा के एक समर्थ एवं प्रभावशाली विद्वान थे। श्रमण भगवान महावीर की ख्याति, देवकृत अतिशय एवं सर्वज्ञता की बात उनके हृदय को अज्ञात रूप से उनके प्रति आकृष्ट करने लगी थी। उनकी अन्तश्चेतना में प्रबल जिज्ञासा थी, किसी भी विषय को, नवीन तथ्य को समझने-परखने के लिए वे सदा उत्सुक रहते यह उनका सहज स्वभाव था, जो आगमों में स्थान-स्थान पर आए उनके प्रश्नों से ध्वनित होता है। प्रत्यक्ष रूप में भले ही वे अपनी परम्परा के प्रति-रोधी श्रमण भगवान महावीर की ओर वाद विवाद की भावना लेकर बढ़े हों, उन्हें पराजित कर अपनी विद्वत्ता एवं प्रभाव का डंका चारों ओर बजाने की भावना उनमें रही हों, किन्तु आगे की घटना स्पष्ट कर देती है कि उनके भीतर जीवित ज्ञान चेतना थी, सत्य की प्रबल जिज्ञासा थी, जो जीर्ण-शीर्ण परम्परा के मोह को, क्षण भर में नष्ट करके ज्ञान का विमल आलोक प्राप्त कर धन्य हो गई।

प्राचीन आगम ग्रन्थों एवं कल्पसूत्र तक में इस बात का कोई वर्णन नहीं है कि इन्द्रभूति जैसे विद्वान भगवान महावीर के पास किस कारण से आए, कैसे प्रबुद्ध होकर प्रव्रजित हो गए? सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु ने एक



गाथा में गणधरों के मन की शंकाओं का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> जिनका समाधान भगवान महावीर ने किया, और वे अपने-अपने शिष्य परिवार के साथ प्रव्रजित हुए। संभवतः यह उल्लेख ही वह पहली कड़ी है जो गणधरों एवं महावीर के संवाद को दार्शनिक भूमिका से जोड़ती है।

### जटिल प्रश्न



तत्कालीन विचार सूत्रों का परिशीलन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस युग में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचार क्षेत्र में बहुत बड़ी उथल-पुथल छाई हुई थी। सैकड़ों विचारक, सैकड़ों विचारधारार्यों और सब अपनी अपनी विचारधारा को ही सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे। जिधर जाओ, उधर विचारों का एक कोलाहल छाया हुआ था, सामान्य श्रद्धालु ही नहीं, किन्तु बड़े से बड़ा विद्वान भी उस स्थिति में यह निर्णय नहीं कर पाता कि क्या सत्य है, क्या असत्य है? आत्मा एवं ब्रह्म का एक ऐसा जटिल विषय था जिसको एक ओर एकान्त जड़ एवं अस्तित्व-हीन सिद्ध किया जाता था तो दूसरी ओर एकांत चैतन्य एवं अद्वैत सत्ता के रूप में स्वीकार किया जा रहा था। वेद एवं उपनिषद् साहित्य में इस प्रकार के सैकड़ों विरोधी विचार सामने आने के कारण ही संभव है इन्द्रभूति जैसे दिग्गज विद्वान भी आत्मा के सम्बन्ध में भीतर ही भीतर संशयाकुल रहे हों, और जब भगवान महावीर द्वारा उनके संशय का समाधान हुआ तो उनका लगा हो, मन का कांटा निकल गया, हृदय सरल एवं सही स्थिति का अनुभव करने लगा है और इस कृतज्ञता में वे भगवान के पास प्रव्रजित हो गये हो। इन्द्रभूति गौतम के मन में संशय था, जीव है या नहीं! इस प्रश्न का भगवान महावीर ने तर्क शुद्ध समाधान किया और इन्द्रभूति भगवान के शिष्य बन गये। इन्द्रभूति के इस संशय की पृष्ठभूमि क्या थी इसे समझने के लिए हमें भारतीय दर्शन में आत्मविचारणा की पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है, उसी पृष्ठभूमि पर हम भगवान महावीर के तार्किक समाधान का सही महत्व समझ पायेंगे।

१. 'जीवे' 'कम्मे' 'तज्जीव' 'भूय' 'तारिसय' 'बंध' मोक्खे य,  
'देवा' 'शेरइय' या 'पुण्णे' 'परलोय' 'लोव्वाणे'।

## विविध मत



सूत्र कृतांग<sup>२</sup> में आत्मा के सम्बन्ध में विविध विचारधाराओं का दिग्दर्शन कराया गया है। कुछ दार्शनिक इस जगत के मूल में पाँच महाभूतों की सत्ता मानते थे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश के संमिलन से ही आत्मा नामक तत्व की निष्पत्ति होती है।<sup>१</sup> पालि ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के दार्शनिकों का उल्लेख है जो चार तत्वों से आत्मा की चेतना की उत्पत्ति मानते थे।<sup>५</sup> आचारांग सूत्र में आत्मा के लिए भूत, प्राण, सत्त्व<sup>४</sup> आदि शब्दों का प्रयोग भी आत्म सम्बन्धी इस विचारणा की एक अस्पष्ट उत्क्रांति की सूचना देते हैं। ऋग्वेद में एक ऋषि की पुकार है—जो आत्मा के सम्बन्ध में विचार करते-करते विचारों की भूलभूलैया में खो जाता है और फिर पुकार उठता है—“मैं कौन हूँ, यह भी मुझे मालूम नहीं।”<sup>६</sup> कहीं सत् को, कहीं असत् को इस जगत का मूल माना गया, और फिर संशय हुआ तो चित्तक कह उठा—‘वह न असत् था न सत्’ वह क्या है यह कहना कठिन है।<sup>७</sup> दार्शनिक चिन्तन की इस उलझन में कभी पुरुष को, कभी प्रकृति को, कभी आत्मा को, कभी प्राण को, कभी मन को आत्मा के रूप में देखा गया फिर भी चित्तन को समाधान नहीं मिला और वह निरंतर आत्म-विचारणा में आगे से आगे बढ़ता रहा।

## देह-आत्मवाद



अपने भीतर जो विज्ञान एवं चेतनामय स्फूर्ति का अनुभव होता है, वह क्या है? यह अनुभूति यह संवेदन जो समस्त देह में व्याप्त है और अन्य जड़ पदार्थों

२. सूत्रकृतांग १-१-१-७ से ८

३. संति पंच महब्भूया इहमगेसिमाहिया।

पुढवी आउ तेऊ वा वाउ आगास पंचमा।

—सूत्र १-१-१-७

४. ब्रह्म जालमुत्त

५. (क) आचारांग १।१।२।१५ (ख) भगवती १।१०

६. न वा जानामि यदिव इदमस्मि।—ऋग्वेद १. १६४.३७

७. ऋग्वेद १०।१२९

से अपने को भिन्न अनुभव कराती है वह आखिर क्या है ? यह प्रश्न अनादि काल से बुद्धि को भकभोरता रहा है ।

छांदोग्य उपनिषद में<sup>८</sup> एक कहानी आती है कि “एक बार असुरों का स्वामी वैरोचन और सुरों (देवों) का स्वामी इन्द्र, प्रजापति के पास आत्मज्ञान लेने को गये । प्रजापति ने उन्हें पानी के एक कुंड में अपना प्रतिबिम्ब दिखला कर कहा—‘इस जल में क्या दीख रहा है ?’ उत्तर में उन्होंने कहा—‘इस जल कुंड में हमारा नख-शिख प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है ।’ प्रजापति ने कहा—“जिसे तुम देख रहे हो वही आत्मा है ।” इस उत्तर से वैरोचन ने यह जाना ‘देह’ यही आत्मा है और असुरों में इस ‘देहात्मवाद’ का उसने प्रचार किया । इन्द्र को इस उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ । तैत्तिरीय उपनिषद में भी इसी प्रकार का एक विचार मिलता है, अन्न से पुरुष उत्पन्न होता है, अन्न से ही उसकी वृद्धि होती है और अन्न में ही वह लय हो जाता है, अतः पुरुष अन्नरस मय ही है—पुरुषोऽन्न रसमयः ।<sup>९</sup>

उपरोक्त विचार को ही जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में—‘तज्जीव तच्छरीरवाद’ कहा गया है ।<sup>१०</sup> द्वितीय गणधर अग्निभूति को इसी विषय में संदेह था । बौद्ध ग्रन्थ पायासी सुत्त एवं जैन आगम रायपसेणीसूत्र में जिस नास्तिक राजा पायासी, पएसी का उल्लेख आता है वह इसी ‘तज्जीव तच्छरीरवाद’ देहात्मवाद का प्रबल समर्थक था । उसने अनेक तर्क एवं परीक्षाओं के आधार पर देह एवं आत्मा का ऐक्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था । प्रदेशी का दादा भी इस विचार धारा का कट्टर समर्थक था, ऐसा रायपसेणी सुत्त से विदित होता है ।<sup>११</sup> और इसी विचार का मूल तैत्तिरीय उपनिषद् एवं ऐतरेय आरण्यक में भी प्राप्त होता है ।

## इन्द्रियात्मवाद

देह को, भूत को ही आत्मा मानने से जिन चित्तकों को संतोष नहीं हुआ, उनका चिंतन आगे बढ़ा, और जब शारीरिक क्रियाओं का निरीक्षण करने लगे तो प्राण-

८. छांदोग्य उपनिषद् ८।८
९. तैत्तिरी० २।१।२०
१०. सूत्रकृतांग १।१।१।११, ब्रह्मजाल सुत्त ।
११. रायपसेणी सुत्त ६१—‘मम अज्जए होत्था अधम्मिए’

शक्ति पर उनका चिंतन टिका होगा, और प्राण को वे आत्मा मानने लगे होंगे, इसलिए उन्होंने जीवन की समस्त क्रियाओं का आधार प्राण को ही बताया।<sup>१२</sup> छांदोग्य उपनिषद्<sup>१३</sup> में कहा है—“विश्व में जो कुछ भूत समुदाय है, वह प्राण पर ही टिका हुआ है। बृहदारण्यक के एक वचन से यह भी स्पष्ट होता है कि—‘मृत्यु इन्द्रिय शक्ति को नष्ट कर देता है, इसलिए सब इन्द्रियाँ मिलकर ‘प्राण’ रूप में प्रतिष्ठित हो गईं।’ प्राणरूपमेव आत्मत्वेन प्रतिपन्ना :—<sup>१४</sup>अतः प्राण इन्द्रिय का सामष्टिक रूप माना गया और प्राण या इन्द्रिय को ही जीवन एवं जगत का आधार मानकर एक प्रकार का समाधान प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। जैन आगमों में भी इस बात का संकेत मिलता है कि इन्द्रियों को प्राण मानने की प्राचीन मान्यता चल रही थी और संभवतः उसी आधार पर दश प्राणों में इन्द्रियों को ‘प्राण’ संज्ञा से अभिहित किया गया।<sup>१५</sup>

### मनोमय-आत्मा



आत्मा को भौतिक रूप में देखने वाले विचारक इस प्रकार विभिन्न दृष्टियों से एक चिंतन धुरी पर घूम रहे थे। कुछ आत्मा को देह रूप में मानते थे, कुछ इन्द्रिय एवं प्राण रूप में। किन्तु यह प्रश्न फिर भी अटका हुआ था कि यदि आत्मा इन्द्रिय रूप ही है, तो वह मन के सम्पर्क के बिना ज्ञान क्यों नहीं कर सकती? और इन्द्रिय-व्यापार के अभाव में भी चिंतन की प्रक्रिया को चालू रखने वाली कौनसी शक्ति है? इसी प्रश्न ने दृष्टि को आगे बढ़ाया, देह एवं इन्द्रियों से परे—मन का अस्तित्व उभरा और दार्शनिकों ने उसे ‘आत्मा’ की संज्ञा दी। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—प्राणरूप आत्मा अन्नमय आत्मा का अन्तरात्मा है, और मनोमय आत्मा प्राणमय आत्मा का अन्तरात्मा है।<sup>१६</sup> यह बात दूसरी है कि बाद में मन के भौतिक

१२. प्राणो हि भूतानामायुः—तैत्तिरीय उपनिषद् २।२।३

१३. प्राणो वा इदं सर्वं भूतं यदिदं—छांदोग्य० ३।१।५।४

१४. बृहदा० (शांकर भाष्य) १।५।२१ पृ० ३७०

१५. (क) भगवती सूत्र ५।१ (ख) ज्ञाताधर्म कथा २

१६. प्राणमयादन्योऽन्तरात्मा मनोमयः ।—तैत्तिरीय २।३।१

एवं अभौतिक स्वरूप के सम्बन्ध में न्याय-वैशेषिक आदि दार्शनिकों में काफी गहरा मतभेद खड़ा हो गया,<sup>१७</sup> किन्तु उसके सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतर रूप के कारण अधिकांश चिंतक उसे ही आत्मा मानते रहे हैं और इस संबंध में काफी पैसे तर्क उपस्थित किये जाते रहे हैं। न्यायसूत्रकार ने एक तर्क दिया है कि 'जिन हेतुओं के द्वारा आत्मा को देह से भिन्न सिद्ध किया जाता है, वे समस्त हेतु आत्मा को मनोमय सिद्ध करते हैं। भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा अनुभूत ज्ञान का एकत्र संधान मन ही करता है, मन सर्व विषयक है, अतः वही आत्मा है। उससे भिन्न अन्य 'आत्मा' नामक तत्त्व मानने की आवश्यकता ही नहीं है।'<sup>१८</sup> संभवतः इस विचारधारा का प्रभाव उपनिषद् काल के प्रारम्भ में अधिक रहा हो और उस प्रभाव के कारण अनेक ऋषियों ने मन की महिमा गाकर उसे ही ब्रह्म एवं आत्मा का रूप दे दिया हो।<sup>१९</sup>

### प्रज्ञानात्मा

मन को आत्मा रूप में स्वीकार कर लेने पर भी दार्शनिकों को इस प्रश्न से मुक्ति नहीं मिली कि इन्द्रिय एवं मन दोनों ही भौतिक हैं, अतः इनका संचालन करने वाला कोई अभौतिक तत्त्व अवश्य होना चाहिए। उस अभौतिक तत्त्व की खोज में कुछ दार्शनिकों ने आगे छलांग लगाई और वे मन से प्रज्ञा तक पहुँचे और 'प्रज्ञान' को 'आत्मा' के नाम से जानने लगे। 'प्रज्ञान आत्मा' के स्वरूप को जानने का उपदेश दिया जाने लगा।<sup>२०</sup> 'प्रज्ञा' को आत्मा स्वीकार करनेवाले दार्शनिक भौतिक से अभौतिक स्वरूप की ओर अवश्य आगे बढ़े, पर फिर भी उनके चित्तनशील मस्तिष्क शांत नहीं रह सके। एक प्रश्न बार-बार उन्हें उद्वेलित कर रहा था। ज्ञान का एक रूप वस्तुविज्ञप्ति रूप है, तो दूसरा अनुभव संवेदन रूप है। प्रज्ञा तो आत्मा का एक पहलू है, वेदन है, संवेदन के बिना वह अधूरा है। ज्ञान के पश्चात् भोग होता है, भोग अनुकूल

१७. (क) न्यायसूत्र ३।२।६१

(ख) वैशेषिक सूत्र ७।१।२३

१८. न्यायसूत्र ३।१।१६

१९. (क) मनो वै ब्रह्मेति—वृहदा० ४।१।६

(ख) मनोह्यात्मा, मनो हि लोको, मनो हि ब्रह्म—छांदोग्य० ७।३।१

२०. कौषीतकी उपनिषद् ३।८

भी होता है प्रतिकूल भी । अनुकूल भोग आत्मा को सुख रूप होता है और उसकी चरम स्थिति है आनंद ! 'प्रज्ञान' के साथ जब तक 'आनंद' की स्थिति नहीं है तब तक आत्म विचारणा अपूर्ण है, यह भी एक विचार उठा और कुछ दार्शनिक आत्मा को 'आनंद रूप' मानने लगे । आनन्द आत्मा<sup>२१</sup> आनंद ही ब्रह्म है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है । इस विचार ने धीरे-धीरे दर्शन को जो सिर्फ बौद्धिक व्यायाम तक ही सीमित था, धर्म, अर्थात् आत्मिक परितृप्ति की ओर उन्मुख किया, यह भी माना जा सकता है ।<sup>२२</sup>

### चिदात्मा



आनन्द को आत्मा मानने वाले दार्शनिकों के समक्ष भी यह प्रश्न खड़ा ही रहा कि आनन्द की अनुभूति करने वाला तत्त्व 'आनन्द' से भिन्न होना चाहिए । 'आनन्द का अन्तरात्मा क्या है' इस प्रश्न पर जब चिंतन धारा बड़ी तो सम्भव है कुछ दार्शनिकों ने कहा—देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, प्रज्ञान तथा आनन्द से भी जो परे है, वह आत्मा है ।<sup>२३</sup> इस विचार ने आत्मा को 'चिद्' रूप में उपस्थित किया । जो चैतन्य है, जो ब्रह्म है, वही आत्मा है—सर्व हि एतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म<sup>२४</sup>—इस ब्रह्म को ही चेतन पुरुष माना गया । वह स्वयं ज्योति स्वरूप, द्रष्टा विज्ञाता है । उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं ।<sup>२५</sup>

इस प्रकार आत्मा सम्बन्धी विचारणा में भारतीय चिंतन में एक विचित्रता, बहुविधमान्यता एवं पूर्वापरविरोधी विचारों का ऐसा वातावरण छाया हुआ था कि किसी भी निश्चय पर पहुँच पाना बहुत कठिन था । एक ओर आत्मा को भूतात्मक मान कर नितांत भौतिक एवं देह से अभिन्न सिद्ध करने वाले दार्शनिक अपनी विचार धारा के प्रचार-प्रसार एवं खण्डन-मण्डन में संलग्न थे, तो दूसरी ओर कुछ प्राणात्मक इन्द्रियात्मक, मनोमय, ज्ञानात्मक, आनन्दात्मक आदि रूपों पर ही विशेष बल देते

२१. आनन्द आत्मा—तैत्तिरीय २।५।१

२२. Nature of Consciousness in Hindu Philosophy—P२०

२४. तैत्तिरीय उपनिषद् २।६

२५. मांडुक्य उपनिषद् २

२६. वृहदारण्यक० ३।४।१२

थे । इस चित्तन का अंतिम स्वर था आत्मा की ब्रह्म रूप चिदात्मक स्थिति । एक ओर अद्वैतजडात्मा और दूसरी ओर अद्वैतचेतनात्मा—इन दो ध्रुवों के बीच में निग्नन्थ विचारधारा एक सामंजस्य उपस्थित कर रही थी । उसने जड़ एवं चेतन दोनों को मौलिक तत्व माना । आत्मा को चेतन माना, पुद्गल को अचेतन ! पुद्गल—कर्म आदि से संपृक्त अवस्था में चेतन मूर्त है, तथा कर्म मुक्त अवस्था में ज्ञानादि गुणों से युक्त अमूर्त !

### इन्द्रभूति की बेचैनी



आत्म विचारणा की इस विषम स्थिति में इन्द्रभूति जैसे विद्वान की प्रज्ञा भी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पा रही थी और इसी कारण कभी-कभी मन में यह प्रश्न मूल से ही अटक जाता कि—जिस आत्मा के संबंध में इतनी अटकलें लगाई जा रही हैं, वह वस्तुतः क्या है ? और कुछ है भी या नहीं ? यदि कुछ है, तो आज तक उस संबंध में किसी ने तर्कसंगत समाधान क्यों नहीं प्राप्त किया ।

जिस प्रकार सामान्य व्यापारी को अपने हिसाब-किताब की एक छोटी-सी भूल भी चैन नहीं लेने देती, उसी प्रकार विद्वान के मन को जब तक उसका संशय निर्मूल न हो जाये शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती, अपनी संपूर्ण विद्वत्ता पर एक चोट सी प्रतीत होती है, और वह विद्वान के लिए किसी भी प्रकार सहा नहीं होती । इन्द्रभूति ने संभवतः अपने युग के बड़े-बड़े मनीषियों, विद्वानों और तर्कशास्त्रियों से वाद विवाद भी किया होगा । उनसे अपने संशय का समाधान भी चाहा होगा, पर कहीं से भी वह उत्तर नहीं मिला, जिसे प्राप्त करने को उनकी आत्मा तड़प रही थीं । वे किसी भी मूल्य पर अपनी शंका का समाधान पाना चाहते थे और आज जब श्रमण महावीर की अलौकिक महिमा, उनकी सर्वज्ञता का संवाद, देव गण द्वारा पूजा अर्चा का यह समारोह देखा तो विजिगीषा के साथ एक प्रबल जिज्ञासा भी अवश्य उठी होगी । वे या तो वाद विवाद करके महावीर को वेदानुयायी बना लेना चाहते होंगे या फिर अपनी शंका का समाधान पाकर उनका शिष्यत्व स्वीकार करने का संकल्प ले चुके हों । इस प्रकार की कुछ भावनाओं ने इन्द्रभूति को भगवान महावीर के समवशरण की ओर आगे बढ़ाया ।



## आत्म-विचारणा

•

पूर्वाग्रह टूट गए ●

संशय का उद्घाटन ●

आत्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्ध ●

आगम प्रमाण से भी सिद्ध नहीं ●

आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव ●

अहंप्रत्यय ●

गुण-गुणीभाव ●

जीव की अनेकता ●

वेद पदों की संगति ●

जीव का नित्यानित्यत्व ●

प्रव्रज्या ●

तीर्थ प्रवर्तन ●





## आत्म-विचारणा

पूर्वाग्रह टूट गए

इन्द्रभूति गौतम जब तीर्थंकर महावीर की धर्मसभा में पहुँचे तो उनकी मनःस्थिति क्या रही होगी यह कहना कठिन है। महावीर के प्रति उनकी धारणाएं बहुत भिन्न थी। महावीर एक राजकुमार थे। बयालीस वर्ष के तेजस्वी युवक थे। इस तूफानी यौवन में जिसप्रकार विजय एवं राज्यविस्तार का उल्लास क्षत्रियों का सहज मनोवेग माना जाता था उसीप्रकार इस युग में अध्यात्म एवं तत्त्वज्ञान की चर्चा तथा गृहत्याग एवं सन्यास भी क्षत्रियकुमारों का एक रुचिकर विषय बन रहा था। अनेक क्षत्रियकुमार युवावस्था में ही गृहत्याग कर सन्यास की ओर बढ़ रहे थे और अध्यात्मविद्या में ब्रह्मऋषियों से भी दो कदम आगे जा रहे थे। वैदिक परम्परा में गृहस्थऋषि की परम्परा का प्राधान्य था, किन्तु क्षत्रियकुमारों ने इस परम्परा में नई क्रांति पैदा की। उन्होंने गृहत्याग कर सन्यास—प्रव्रज्या ग्रहण की और वह भी जीवन के चतुर्थ आश्रम में नहीं, किन्तु द्वितीय आश्रम में ही। इस आध्यात्मिक उत्क्रांति से ब्राह्मणों से क्षत्रियों की आध्यात्मिक श्रेष्ठता एवं तेजस्विता का प्रभाव चारों ओर फैल चुका था<sup>१</sup> और इन्द्रभूति गौतम पर भी वह प्रभाव किसी

१. इस संबंध में देखिए दीघनिकाय में तथागत का कथन—“तथागत बुद्ध ने कहा “वाशिष्ठ ब्रह्मा सन्तकुमार ने भी गाथा कही है—गोत्र लेकर चलने वाले जनों

रूप में पड़ चुका था। इन्द्रभूति आयु में महावीर से ज्येष्ठ थे। महावीर लगभग बयालीस वर्ष के थे<sup>२</sup> जब कि इन्द्रभूति पचास को पार कर रहे थे।<sup>३</sup> अध्यात्मज्ञान में भी वे महावीर से अपने को श्रेष्ठ समझ रहे होंगे। ब्रह्मत्व का गौरव जो कि अहंकार का ही एक पर्याय था, उन्हें अपने को भारत का एक महानतम विद्वान, गुरु एवं प्रभावशाली याज्ञिक तथा धर्मयोद्धा के रूप में देख रहा था, और महावीर को एक नवोदित तत्त्वज्ञानी, अधिक से अधिक नौसिखिया धार्मिक मल्ल से अधिक नहीं मान रहा होगा। इसलिए वाद विवाद में महावीर को चुटकियों में पराजित करने का मनोवेग उनके भीतर मचल रहा होगा। किन्तु जब वे महसेन वन<sup>४</sup> के निकट पहुँचे, महावीर के समवसरण की अलौकिक छटा देखी, असंख्य-असंख्य देवताओं को उनके चरणों में भक्तिपूर्वक वंदन करते देखा, उनकी दिव्य ध्वनि का मनोहारि घोष सुना। तो उनकी पूर्व धारणाएं निरस्त हो गईं। अभिमान, अहंकार तथा मात्सर्य की भावनाओं का मालिन्य धुल गया। महावीर के प्रति उनके मन में एक आकर्षण का भाव जगा, श्रद्धा की हिलोरें उठने लगी, और मन करने लगा जैसे अभी इनके चरणों में सिर झुका कर समर्पित हो जायें। इन्द्रभूति समझ नहीं पा रहे थे

में क्षत्रिय श्रेष्ठ है। जो विद्या एवं आचरण से युक्त है, वह देव मनुष्यों में श्रेष्ठ है।” मैं इसका अनुमोदन करता हूँ।” दीर्घनिकाय ३।४। पृ० २४५। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी इस विचार की प्रतिध्वनि मिलती है—“क्षत्रिय से उत्कृष्ट कोई नहीं है। उसी से राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण नीचे बैठ कर क्षत्रिय की उपासना करता है। वह क्षत्रिय में ही अपने यश को स्थापित करता है।”

—बृहदारण्यक १।४।११, पृ० २८६

२. (क) कल्पसूत्र सूत्र ११६, (ख) आचारांग २
३. आवश्यक निर्युक्ति गाथा ६५०
४. भगवान महावीर की प्रथम देशना (वेसे द्वितीय) एवं तीर्थ प्रवर्तन पावापुरी के महसेन वन में हुआ इस मान्यता के साथ दिगम्बर परम्परा मत भेद रखती है। कषायपाहुड की टीका (पृ० ७३) के अनुसार भगवान महावीर एवं गणधरों का वातालाप एवं तीर्थप्रवर्तन राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर हुआ। यद्यपि केवल ज्ञान वंशाख शुक्ल दशमी को ऋजु वालुका नदी के किनारे हुआ इस बात का समर्थन वहाँ भी मिलता है—

वंशाखे मासि सज्योत्सदशम्यामपराह्लुके

—महापुराणे उत्तर पुराण ७।४।३५०

कि उनके मन पर क्या हो रहा है ? क्या महावीर की माया उनके मन को भी व्यामोहित कर रही है ? इन असंख्य देवताओं एवं अगणित मनुष्यों को महावीर ने जडवत् स्तंभित कर रखा है ? यह क्या चमत्कार है ? क्या माया है ? और कैसे इन सब के मनोभाव जानकर उनका समाधान कर रहे हैं ? क्या वस्तुतः ही ये सर्वज्ञ है ? सब के मन की बातें जान सकते हैं ? क्या मेरे मन की हलचल भी ये जान पायेंगे ? और अब तक जो मेरे मन में एक संशय उठता रहा है उसका समाधान भी ये कर सकते हैं ? इन्द्रभूति इन विचारों में खोये-खोये महावीर के निकट पहुँचे । तो एक धीर गंभीर स्वर उनके कानों से टकराया “इन्द्रभूति ! आखिर तुम मेरे निकट आ ही गये ।”

### संशय का उद्घाटन

इन्द्रभूति चौंके । महावीर मेरे नाम से भी परिचित हैं ? मुझे पहचानते भी है ? हाँ, आखिर कौन है इस मगध मंडल में जो इन्द्रभूति को न पहचाने ? इन्द्रभूति ने गोर से तीर्थकर महावीर की अतिशय पूर्ण मुखमुद्रा की ओर देखा, मन हुआ कि विनय नहीं तो, सांस्कृतिक शिष्टाचार वश ही अभिवादन करूँ, तभी भगवान महावीर ने कहा—“आयुष्मन् इन्द्रभूति ! इतने बड़े विद्वान होकर भी तुम अपने मन का समाधान नहीं पा सके ? सब शास्त्रों का आलोडन करके भी उनका नवनीत टटोलते ही रह गये ? अब तक तुम्हें अपने आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी संदेह है ?” तुम सोच रहे हो कि यदि जीव (आत्मा) नामक कोई तत्व है तो वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध क्यों नहीं हो सकता । जो प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं, उसको अस्तित्व आकाशकुमुम की भाँति कभी भी संभव नहीं हो सकता ? क्या यह ठीक है ?”

### आत्मा : प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से असिद्ध

इन्द्रभूति महावीर के द्वारा गुप्त मनोभावों का उद्घाटन सुनते ही अचकचा गए । सच, महावीर सर्वज्ञ हैं ? नहीं तो कैसे ये मेरे गुप्ततम मनोभावों को यों

बतला सकते थे ? वे पहले क्षण ही महावीर के गूढ़तम प्रभाव में आ गये। फिर भी अपनी वाद विधि के अनुसार महावीर से प्रश्नोत्तर करने को प्रस्तुत हुए और बोले—“हाँ ! मैं आपकी वाणी की यथार्थता को मानता हूँ। जीव के अस्तित्व विषय में मुझे संदेह है, क्या आप जीव के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं, और उसे तर्क, हेतु एवं प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा सिद्ध कर सकते हैं ?<sup>६</sup> मैं तो मानता हूँ वह प्रत्यक्ष-सिद्ध नहीं है, जिस प्रकार घट-पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष में दिखलाई देते हैं, उस प्रकार आत्मा का दर्शन प्रत्यक्ष में नहीं हो सकता। और जो प्रत्यक्ष-सिद्ध नहीं, उस सम्बन्ध में अनुमान प्रमाण भी नहीं चल सकता। चूँकि अनुमान का भी हेतु (चिन्ह) प्रत्यक्ष-गम्य होना चाहिए। धुँएँ को देखकर अग्नि का अनुमान किया जाता है, चूँकि धुँआँ जो कि अग्नि का अविनाभावि हेतु है, उसे हम प्रत्यक्ष में कभी अग्नि के साथ देख चुके होते हैं, इसलिए धुँएँ को देखकर परोक्ष अग्नि को अनुमान द्वारा जाना जा सकता है, पर आत्मा का ऐसा कोई हेतु हमारे समक्ष नहीं है, जिसका आत्मा के साथ अविनाभाविसंबन्ध रहा हो और वह प्रत्यक्ष में कभी देखा गया हो। इसलिए आत्मा न प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है और न परोक्ष—अनुमान से।

### आगम प्रमाण से भी सिद्ध नहीं

अब रहा—आगम प्रमाण। आगम प्रमाण से भी आत्मा-जीव का अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता। प्रथम तो आगम प्रमाण अनुमान प्रमाण का ही अंग है। फिर आगम प्रमाण स्वयं एक विवादास्पद विषय है। स्वर्ग नरक आदि अदृष्ट विषयों का प्रतिपादन करने वाले आगम के कर्ता आप्तपुरुष ने भी आत्मा का कभी प्रत्यक्ष दर्शन किया हो, यह सम्भव नहीं है। और फिर उनके प्रतिपादन में भी परस्पर विरोध है। कोई कहता है—यह संसार उतना ही है जितना इन्द्रियों द्वारा दिखलाई पड़ता है।<sup>७</sup> अर्थात् आत्मा इन्द्रियों से दिखलाई नहीं पड़ता इसलिए आत्मा नामक कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है। भूत समुदाय से विज्ञानघन उत्पन्न होता है और भूतों के विलय के साथ ही वह नष्ट हो जाता है। परलोक नाम की कोई वस्तु भी नहीं है।<sup>८</sup> इसके

६. अस्ति कि नास्ति वा जीवस्तत्स्वरूपं निरूप्यताम्।—उत्तर पुराण—७।४।३६१

७. एतावानेव लोकोऽयं यावानिन्द्रिय गोचरः। —चार्वाक दर्शन (षड्दर्शन ८१)

८. विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय

तान्येवानुविनश्यति न च प्रेत्य संज्ञाऽस्ति। बृहदा० २।४।१२

विरोध में वेद एवं उपनिषद्<sup>१</sup> के अनेक वचन आत्मा को अमूर्त, अकर्ता, निर्गुण, भोक्ता आदि विभिन्न रूपों में सिद्ध भी करते हैं—अतः आगम परस्पर विरोधी होने के कारण प्रामाण्य नहीं हो सकते ।

### आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव



महावीर—“आयुष्मन् इन्द्रभूति ! लगता है विचारों की विविधता एवं शास्त्र वचनों की गहराई के हार्द को न पकड़ पाने के कारण ही तुम अभी तक इस संशय से ग्रस्त रहे हो । तुम अपनी दृष्टि को स्वच्छ एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त करो, आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव तुम्हें हो सकता है ।”<sup>१०</sup>

इन्द्रभूति—(आश्चर्य के साथ) “आर्य ! क्या यह सम्भव है ! अप्रत्यक्ष अमूर्त आत्मा का मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता हूँ ?”

महावीर—“अवश्य ! तुम ही क्या ? प्रत्येक प्राणी आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है, कर रहा है !”

इन्द्रभूति की जिज्ञासा प्रबल हो उठी वे महावीर के और निकट आये एवं अत्यन्त आतुरता से बोले—वह कैसे ?

महावीर—“जीव है या नहीं ? यह जो संशय है, वह तुम्हारी विज्ञान चेतना का ही एक रूप है । विज्ञान आत्मा का स्वरूप है ।” संशय रूप विज्ञान का तुम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो, और यही आत्मा का अनुभव है—अतः कहा जा सकता है कि तुम आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो । जिस प्रकार शरीर का सुख-दुःख स्व-संविदित है, उसके लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं, उसीप्रकार विज्ञान रूप आत्मा का संशय के रूप में तुम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो, तो फिर किसी प्रमाण की तुम्हें कोई अपेक्षा नहीं होनी चाहिए ।”

९. (क) छांदोग्य उपनिषद् ८।१।१ (ख) मंत्रायणी उपनिषद् ३।६।३६

१०. गीतम ! पञ्चक्खो च्चियजीवो जं संसयातिविण्णाणं ।

पञ्चक्खं च ण सज्झ जध सुह-दुक्खं सदेहमि । —गणधरवाद गाथा १५५४

११. जीवो उवओग लक्खणो—उत्तराध्ययन

## अहंप्रत्यय



इन्द्रभूति—“आर्य ! संशय विज्ञान रूप में आत्मा का प्रत्यक्षीभाव-वास्तव में युक्ति-संगत है । मैं आपके वचन को मानता हूँ, किन्तु क्या संशय के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में भी आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है ?”

महावीर—“आयध्मन् ! मैंने किया है, मैं कर रहा हूँ, मैं करूँगा—इस प्रकार जो अपने कार्यों में आत्म-बोध की ध्वनि आती है, ‘अहं’ रूप ज्ञान अनुभव होता है क्या वह प्रत्यक्ष आत्मानुभव नहीं है ?”<sup>१२</sup>

यदि जीव नहीं हैं, तो ‘अहं’-प्रत्यय—(मैं का बोध) कौन कर सकता है और कैसे कर सकता है ? ‘मैं हूँ या नहीं’ इस प्रकार की शंका करने वाला कौन है ? तुम ने सोचा इस विषय पर ? युक्ति पूर्वक विचार करने पर ‘अहंप्रत्यय’ से तुम अपने आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो ।<sup>१३</sup>

इन्द्रभूति—“आर्य ! ‘अहं’ का बोध जिस प्रकार ‘आत्मा’ का परिचायक माना जाता है, उसी प्रकार ‘देह’ का परिचायक भी माना जा सकता है ।”

महावीर—“इन्द्रभूति ! ‘अहं’ शब्द से यदि देह-बोध माना जाय तो फिर मृत शरीर में ‘अहंप्रत्यय’ होना चाहिए, पर वैसा तो नहीं होता ! अतः ‘अहंप्रत्यय’ का विषय देह नहीं, किन्तु आत्मा—चैतन्य ही हो सकता है । अतः जब ‘अहंप्रत्यय’ से तुम्हें आत्मबोध हो जाता है, फिर मैं हूँ या नहीं, इस संशय को कोई अवकाश नहीं रहता, बल्कि ‘मैं हूँ’ यह आत्म—विश्वास की ध्वनि उठनी चाहिए ।”

१२ तुलना कीजिए—

सभी लोकों को आत्मा के अस्तित्व की प्रतीति है, ‘मैं नहीं हूँ’ ऐसी प्रतीति किसी को भी नहीं है, यदि अपना अस्तित्व अज्ञात हो तो ‘मैं नहीं हूँ’ ऐसी प्रतीति भी होनी चाहिए ।

—ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य १.१.१

१३ न्यायमंजरी (पृ० ४२६) में अहंप्रत्यय को ही आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान कहा गया है । न्यायवार्तिक (पृ० ३४१) में भी इसे प्रत्यक्ष ज्ञान की श्रेणी में लिया गया है ।

## गुण-गुणी भाव

इन्द्रभूति—“आर्य ! ‘संशय रूप विज्ञान’ देह में क्यों नहीं हो सकता ? जिस प्रकार आत्मा के साथ ‘अहं बुद्धि’ मानी गई है, वैसे ही शरीर के साथ भी तो ‘अहं बुद्धि’ है। शरीर जब तक प्राण को धारण करता है तब तक ‘अहं बुद्धि’ का आधार उसे ही माना जाय तो क्या आपत्ति है ?”

महावीर—“इन्द्रभूति ! कोई भी गुण बिना गुणी के नहीं रह सकता।<sup>१४</sup> संशय स्वयं ज्ञान रूप है, ज्ञान आत्मा का गुण है। गुण बिना गुणी के कैसे रहेगा ?”

इन्द्रभूति—“क्या ज्ञान देह का गुण नहीं हो सकता ?”

महावीर—“नहीं ! देह-जड़ है, मूर्त है, जबकि ज्ञान अमूर्त एवं बोध रूप है। गुण अनुरूप गुणी में ही रह सकता है। जैसा गुणी होगा, वैसा ही गुण होगा। यह नहीं कि गुणी अन्य हो, गुण अन्य। जड़ गुणी में चेतन गुण नहीं रह सकता। यद्यपि शरीर आत्मा का सहचारी होने से उपचार से उसे भी आत्मा कहा जा सकता है, किन्तु वस्तुतः शरीर एवं आत्मा के लक्षण परस्पर भिन्न हैं, शरीर घट की भाँति चाक्षुष (आँखों से दिखाई दिया जाने वाला) है, इसलिए जड़ है, आत्मा इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है, क्यों कि वह अमूर्त है।<sup>१५</sup> ज्ञान भी अमूर्त है, अतः वह भी इन्द्रियग्राह्य नहीं, किन्तु आत्म-संवेद्य है। अतः ज्ञान रूप गुण का आधार कोई होना चाहिए और वह ज्ञानमय आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई हो नहीं सकता। इन्द्रभूति ! यह सिद्धान्त तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव से भी सत्य प्रतीत होना चाहिए, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से भी एवं मेरे आप्त वचन (सर्वज्ञ वचन) से भी तुम आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास कर सकते हो ?”

१४ भारतीय दर्शनों में इस विषय पर तीन प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। पहला मत है न्याय-वैशेषिक दर्शन का। वे गुण-गुणी में भेद मानते हैं। दूसरा मत है सांख्य दर्शन का, वे गुण-गुणी में अभेद स्वीकार करते हैं। तीसरे मत में जैन एवं मीमांसक हैं। जैन दर्शन गुण-गुणी में कथंचित् भेद, कथंचित् अभेद (भेदाभेद) मानता है। मीमांसा दर्शन भी भेदाभेद की धारणा रखता है।

१५ नो इन्द्रियगोचर अमुक्तभावा—उत्तरा० १४।१७



इन्द्रभूति—“आर्य ! जीव के अस्तित्व के सम्बन्ध में आपके तर्क मुझे मान्य हो सकते हैं, फिर भी मैं यह कैसे विश्वास करूँ कि आप सर्वज्ञ हैं ? और यदि हैं भी तो क्यों आप का वचन सत्य ही हो, असत्य भी हो सकता है ?

महावीर—इन्द्रभूति ! तुम सर्वज्ञता में विश्वास करो; या न करो; पर, तुम जानते हो कि मैं तुम्हारे मन के समस्त संशयों का निवारण कर रहा हूँ, और फिर मुझे किसी प्रकार का भय, मोह एवं राग-द्वेष नहीं है, कि जिस कारण मैं असत्य बोलूँ। मैंने अपने अन्तर दोषों का परिमार्जन किया है और आत्मा के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रतीति की है, अतः मैं तुम्हें कहता हूँ कि तुम तर्क एवं प्रमाण के साथ पेरे वचन पर भी विश्वास कर सकते हो, और फिर तुम्हारा आत्म-संवेदन तो सब से मुख्य प्रमाण है ही।”

इन्द्रभूति को लगा—जैसे तीर्थंकर महावीर की वाणी से उनके समस्त संशय छिन्न हो रहे हैं, हृदय में ज्ञान का आलोक, जो अब तक एक पर्दे के पीछे छिपा हुआ था अब जैसे उभर रहा है, और उससे उद्भूत आलोक की छवि से मन-मस्तिष्क में शांत प्रकाश छा रहा है।

### जीव की अनेकता



इन्द्रभूति ने भगवान महावीर से कहा—“आर्य ! आपने जिस चेतनालक्षण जीव की संसिद्धि की, उस जीव का रूप क्या है ? क्या वह अखंड व्यापक सत्ता है या भिन्न स्वरूप में है ?

महावीर—“इन्द्रभूति ! जीव अनंत है और प्रत्येक जीव अपनी स्वतंत्र सत्ता है। सामान्यतः सिद्ध और संसारी जीव के दो भेद हैं। सिद्ध जीव कर्म मुक्त हैं अतः उनके स्वरूप में कोई भेद नहीं, संसारी जीव कर्म युक्त हैं, कर्मों के कारण उनमें भेद भी होता है। संसारी जीव के मूलतः दो भेद होते हैं—त्रस और स्थावर।

इन्द्रभूति—वेद एवं उपनिषद् में जीव को ब्रह्म कहा गया है, और उसे एक अखंड रूप में माना है। संसार में जो भिन्न-भिन्न आत्माएँ हैं, उनमें उसी ब्रह्म का रूप प्रतिबिम्बित होता है, जैसे कि जल में एक चन्द्रमा के विभिन्न प्रतिबिम्ब

भलकते हैं।<sup>१६</sup> जिस प्रकार आकाश एक अखंड विशुद्ध एवं स्वच्छ है, किन्तु फिर भी जिसकी आँख रोगग्रस्त है (तिमिररोगी) वह उसमें विभिन्न रंगों व दृश्यों की कल्पना करता है, उसी प्रकार एक ही विशुद्ध ब्रह्म अविद्या से कलुषित हृदय वालों को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिभासित होता रहता है।<sup>१७</sup> इस प्रकार शास्त्र वचनों से तो जीव अखंड एवं सर्वव्यापक एक रूप सिद्ध होता है और आप उसके भेद एवं भेदान्तर की बात कर रहे हैं यह कैसे युक्ति संगत है ?”

महावीर—इन्द्रभूति ! आकाश की भाँति जीव अखंड एवं एक नहीं हो सकता। आकाश का एक ही लक्षण सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, जबकि जीव प्रतिपिंड में भिन्न है और उनके लक्षण भी परस्पर भिन्न हैं। सुख-दुःख, बंध-मोक्ष प्रत्येक जीव का भिन्न है, यदि जीव एक है तो एक जीव सुखी होने पर सब जीव सुखी होने चाहिए। एक जीव को दुःख अनुभव होने पर सब जीवों को दुःख का अनुभव होना चाहिए। एक का मोक्ष होने पर सब को मुक्ति हो जानी चाहिए। पर ऐसा कभी होता नहीं, प्रत्येक जीव का सुःख-दुःख भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, इसलिए यह तर्कसिद्ध बात है कि सब जीव परस्पर भिन्न हैं, चूँकि उनका लक्षण भिन्न भिन्न है।”

आकाश की भाँति सर्वगत्व तथा एकत्व की कल्पना जीव में करने पर सुख-दुःख एवं बंध-मोक्ष की व्यवस्था ही गड़बड़ा जायेगी।<sup>१८</sup> चूँकि

१६. एक एव हि भूतात्मा भूते-भूते प्रतिष्ठितः ।  
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥

—ब्रह्मविन्दु उपनिषद् ११

१७. यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः ।  
संकीर्णमिव मात्राभिर्भिन्नाभिरभिमन्यते ॥  
तथेदममलं ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया ।  
कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रकाशते ॥

—बृहदारण्यक भाष्यवार्तिक ३, ४, ४३-४४

१८. यहाँ पर यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि भारत के प्रायः सभी प्रमुख दर्शन—न्याय—वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसक, बौद्ध तथा जैन आत्मा के अनेकत्व में विश्वास रखते हैं, जबकि शांकर वेदांत आत्मा को एक मानते हैं।

आकाश सर्वगत व्यापक है, इसलिये न उसमें कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व ! कर्ता, भोक्ता एवं मंता (मनन करने वाला) जीव एक दूसरे से स्वतंत्र होता है, उसका अपना अस्तित्व अप्रतिबद्ध होता है, वह अकेला पुण्य-पाप करता है और अकेला भोक्ता है, यदि वह व्यापक है, तो न तो अकेला कुछ कर सकता है, और न अकेला भोग सकता है । अतः जीव का अनेकत्व, अनन्त पना तथा असर्वगतत्व—स्वतन्त्र रूप (शरीरव्यापी न कि सर्वव्यापी) तर्क से भी सिद्ध है और वही बंध-मोक्ष, जन्म-मरण, कर्मफल भोक्तृत्व के सिद्धान्त का मूल आधार है ।<sup>१९</sup>

इन्द्रभूति—आर्य ! आपके युक्तिपूर्ण वचनों से जीव विषयक मेरा संदेह नष्ट हो रहा है । स्वयं मुझे इस विषय में प्रतीत हो रहा है कि 'जीव है ।' किन्तु फिर भी कभी-कभी वेद वाक्यों की विविधता मुझे पुनः संदेह की ओर ढकेल देती है, जैसे कि—“विज्ञानघन एव एतेभ्यः” आदि कि यह विज्ञानघन

१९. आत्मा को व्यापक मानने के संबंध में इन्द्रभूति के मन में जो ऊहापोह उपस्थित हुआ है उसका कारण औपनिषदिक चिंतन की विविधता है । उपनिषद् में कहीं आत्मा को देह प्रमाण माना है, तो कहीं अंगुष्ठ प्रमाण एवं कहीं सर्वव्यापक । कौषीतकी उपनिषद् (४-२०) में आत्मा को देह प्रमाण बताते हुए कहा है—“जिस प्रकार तलवार म्यान में व्याप्त है, उसी प्रकार आत्मा (प्रज्ञात्मा) शरीर में नख एवं रोम तक व्याप्त है ।’ बृहदारण्यक में उसे चावल या जौ जितना बड़ा कहा है—यथा ब्राहिर्वा यवो वा—(५।६।१) कठ उपनिषद् में (२।२।१२) एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् (३।१३)—“अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा, सदा जनानां हृदये संनिविष्टः” में अंगुष्ठ प्रमाण माना है । मुंडक आदि अनेक उपनिषदों में उसे व्यापक भी कहा गया है—“तदपाणि पादं नित्यं विभुं सर्वगतं”—(व्यापकमाकाशवत्)—मुण्डक० शांकर भाष्य १।१।६ । कोई ऋषि उसे ‘अणोरणीयान् महतो महीयान्’ (मैत्र्युप० ६।३८ । कठोप० १।२।२० । छांदोग्य ३।१।४।३ । मानकर उसका ध्यान करने की बात कहते हैं । इस प्रकार के विरोधी विचार-चिंतन के कारण आत्मा के संबंध में इन्द्रभूति भी कुछ निर्णय नहीं कर पाए हों यह इससे ध्वनित होता है । न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसक तथा शंकराचार्य आदि ने आत्मा को व्यापक माना है, तथा जैन दर्शन ने आत्मा को देह प्रमाण माना है ।

भूत समुदाय से ही उत्पन्न होता है और पुनः उसी में विलय हो जाता है ।  
परलोक नाम की कोई वस्तु नहीं है ।”

## वेद पदों की संगति



महावीर—“इन्द्रभूति ! तुमने वेद पदों का अध्ययन किया है, पारायण भी किया है, पर मुझे लगता है तुमने अभी तक केवल शब्द पाठ किया है, वेदों के हृदय को नहीं समझा है, शब्दों में सुप्त अर्थ को जागृत नहीं किया है, तभी ऐसी भ्रांति तुम्हारे मन-मस्तिष्क को जकड़े हुए हैं । किंतु यदि तुम दृष्टि को स्पष्ट करके इन पदों का अर्थ समझने का प्रयत्न करोगे तो आत्मा विषयक भ्रांति इन्हीं पदों से दूर हो सकती है ।”

इन्द्रभूति—“आर्य प्रभु ! आपके हृदयस्पर्शी वचनों से मेरा हृदय प्रबुद्ध हो रहा है, मेरी जिज्ञासा जागृत हुई है, कृपया आप ही इन वेद पदों का सही अर्थ बतलाने की कृपा करें ।”

महावीर—आयुष्मन् इन्द्रभूति ! “विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु-  
विनश्यति न च प्रेत्य संज्ञाऽस्ति ।” यह जो वेदवाक्य (उपनिषद्) है, उसके आधार पर तुम मानते हो कि भूत समुदाय से विज्ञानघन समुद्भूत होता है, और फिर उन्हीं में लय हो जाता है, इसलिए परलोक—परभव में जाने वाला कोई नहीं है, यह अर्थ वास्तव में गलत है । विज्ञानघन शब्द से ‘जीव’ आत्मा का भाव ध्वनित होता है । ज्ञान आत्मा का स्वरूप है । जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ अनन्तानन्त ज्ञान पर्यायों का संघात है, अतः उसे विज्ञानघन कहा जाता है । भूतेभ्यः समुत्थाय’—इत्यादि पदों का तात्पर्य घट-पट आदि पदार्थ भूत हैं, वे ज्ञेय हैं, जैसे ‘घट’ देखने से घट विज्ञान उत्पन्न हुआ, ‘पट’ देखने से पट विज्ञान उत्पन्न हुआ । सिद्धान्त यह है कि ज्ञेय से ज्ञान की उत्पत्ति होती है । घट आदि भूतों से घट विज्ञान उत्पन्न हुआ, वह जीव की एक विशेष पर्याय है, इसलिये यह कहा जा सकता है कि यह घट विज्ञान रूप जीव घट से उत्पन्न हुआ, इसी प्रकार अन्य अनन्त भूत-पदार्थों के ज्ञान के साथ जीव तदनुरूप पर्याय धारण कर लेता है, अतः वह उस पदार्थ से उत्पन्न हुआ ऐसा कहा जाता है ।

‘तान्येवानुविनश्यति’—इस पद से यह ध्वनित होता है कि जो ज्ञान जिस ज्ञेय रूप पदार्थ के आलम्बन से उत्पन्न हुआ, उसके नष्ट होने पर वह ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। घटरूप ज्ञेय के नष्ट हो जाने पर घट रूप विज्ञान भी नष्ट हो गया, और घट विज्ञान आत्म रूप पर्याय भी नष्ट हो गई। वह पर्याय विज्ञानघन रूप जीव से अभिन्न थी, अतः यह कहा जाता है कि अमुक भूत के नाश होने पर विज्ञानघन का भी नाश हो गया। इसके साथ एक बात यह भी समझ लेना है कि जब घट रूप ज्ञान पर्याय का नाश हुआ तो विज्ञानघन में अन्य पट आदि ज्ञान पर्याय का जन्म भी हो गया। एक ज्ञान पर्याय के विलय होने पर अन्य ज्ञान पर्याय उत्पन्न होती है, और उन दोनों ज्ञान पर्याय का आधार भूत विज्ञानघन-आत्मा विद्यमान होने से आत्मा को नित्यानित्यता सिद्ध होती है। यह विज्ञान घन आत्मा—उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभाव से युक्त है। पूर्व पर्याय के विलय से उसका व्ययस्वभाव परिलक्षित होता है, अपर पर्याय के उद्गम से उत्पाद स्वभाव का परिचय मिलता है, तथा दोनों स्थितियों में विज्ञानघन आत्मा का अविनाशी ध्रुव स्वभाव स्थिर रहने से यह ध्रौव्य स्वभावी है।

इन्द्रभूति—आर्य ! जब आत्मा त्रिस्वभावी (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त) है तो फिर ‘न प्रेत्य संज्ञास्ति’ यह क्यों कहा गया ?

महावीर—इन्द्रभूति ! इस वचन का तात्पर्य है, जब आत्मा पूर्व पर्याय का त्याग करके अपर पर्याय को ग्रहण कर लेता है तब पूर्व पर्याय का अंश उस में नहीं रहता। जब आत्मा घट ज्ञान का त्याग करके पट ज्ञान में प्रवृत्त हुआ तो क्या तब भी उसको ‘घटज्ञान’ या ‘घटोपयोग’ संज्ञा दी जा सकती है, नहीं न ! चूँकि घटोपयोग निवृत्त होने पर ही पटोपयोग प्रवृत्त होता है—अतः यह माना जा सकता है उस समय प्रेत्य-अर्थात् पूर्व पर्याय को संज्ञा नहीं रहती। यहाँ प्रेत्य से अर्थ पूर्व पर्याय समझना चाहिए, न कि परभव !

इन्द्रभूति—आर्य ! यह कैसे कहा जा सकता है कि उक्त वाक्य में परलोक का निषेध नहीं है ?

## जीव का नित्यानित्यत्व

महावीर—“आयुष्मन् ! वेद वाक्यों की पूर्वापर संगति देखने से यह विश्वास होता है कि उन्होंने जीव का निषेध नहीं किया है, बल्कि देह से जीव को भिन्न माना है ।<sup>१०</sup> और ‘अग्निहोत्रं जुह्यात् स्वर्गकामः ।’<sup>११</sup> “ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्ग्यज्ञेन कल्पताम्”<sup>१२</sup> आदि वचनों में यज्ञ आदि का फल स्वर्ग प्राप्ति बताया है । यदि भवान्तर में जाने वाला कोई नित्य आत्मा नहीं है, तो फिर यज्ञ आदि कर्म का फल प्राप्त करने के लिए स्वर्ग आदि परलोक में कौन जायेगा ? इसलिए तुम अपनी समस्त शंकाओं का निराकरण करके यह दृढ़ विश्वास करो कि ‘जीव है’ वह नित्यानित्य है, जैसा कर्म करता है, उसके अनुसार फल भी प्राप्त करता है ।

## प्रव्रज्या

तीर्थंकर महावीर के युक्तिसंगत वचनों से इन्द्रभूति गौतम के मन की गाँठ खुल गई, उनका संशय निर्मूल हो गया और ज्ञान पर गिरा हुआ पर्दा हट गया । उन्हें भगवान् महावीर की सर्वज्ञता एवं वीतरागता पर अटूट विश्वास हो गया । इन्द्रभूति के मन में गुप्तसंशय, जो उन्होंने आज तक किसी से नहीं बताये, भगवान् महावीर ने उन्हें खोलकर रख दिए और गौतम के मनोभावों का स्पष्ट उद्घाटन कर दिया । इसलिए गौतम महावीर की सर्वज्ञता पर श्रद्धा करने लगे । दूसरी बात भगवान् महावीर की तत्त्व प्रतिपादन शैली बड़ी अद्भुत, युक्तिसंगत एवं वीतरागता का स्पष्ट दर्शन करानेवाली थी । आत्मा जैसे गंभीर विषय पर इतनी लम्बी चर्चा करने पर भी उन्होंने कहीं भी यह नहीं कहा कि—मैं कहता हूँ इसलिए तुम मानो । उनकी शैली श्रद्धा प्रधान नहीं, बल्कि तर्क प्रधान शैली थी, जो जिज्ञासु के मन में छिपी हुई शंका को बाहर निकाल कर ले आती । इस वाद विवाद शैली में जिस सौम्यता,

२०. बृहदारण्यक ४।३।६ में कहा है कि ‘ज्योतिरेवायं पुरुषः ? आत्म ज्योतिरेवायं सम्राड्,—यह पुरुष आत्म ज्योति है ।

२१. मंत्रायणीउपनिषद् ३।६।३६

२२. यजुर्वेद १८।२९

समन्वय भावना और बहुश्रुतता का परिचय गौतम को मिला वह अभूतपूर्व था और भगवान महावीर की वीतरागता का स्पष्ट प्रमाण था। गौतम का मन और हृदय पूर्वाग्रहों से बंधा हुआ नहीं था, आम्नाय एवं शिष्यपरंपरा का व्यामोह तिलभर भी उनके मन में नहीं था। वे सत्य के जिज्ञासु थे, सत्य के शोधक थे, और जब भगवान महावीर के वचनों में उन्हें सत्य की प्रतीति हुई, उनकी वाणी में सत्य का साक्षात् दर्शन हुआ तो कुछ ही क्षणों में उन्होंने अपने समस्त पूर्व व्यामोहों को, संप्रदाय एवं संप्रदायगत के चिन्हों का त्याग कर दिया। भगवान महावीर के चरणों में हाथ जोड़कर विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगे “भन्ते ! मैंने आपके तर्कयुक्त वचनों का श्रवण किया है, मेरे मन के संशयों का उच्छेद हो गया है, मैं आपकी वीतरागता पर श्रद्धा करता हूँ, आपके ज्ञान को लोक कल्याणकारी मानता हूँ। प्रभो ! मुझे भी अपना शिष्य बनाइये, अपनी आचार विधि की दीक्षा दीजिए और मुक्ति का सच्चा मार्ग दिखलाइए।”

इन्द्रभूति गौतम ने जब भगवान महावीर से शिष्य दीक्षा देने की प्रार्थना की तो संभवतः उनके पांच सौ शिष्यों को भी आश्चर्य हुआ होगा। भगवान के वचनों पर उन्हें भी श्रद्धा एवं विश्वास हुआ और वे भी गौतम के साथ ही भगवान महावीर के शिष्य बन गये।

### तीर्थ प्रवर्तन



गौतम जब महावीर के शिष्य बने तो यह संवाद बिजली की भाँति चारों ओर फैल गया। और तब पावापुरी में एकत्रित विशाल ब्राह्मण समुदाय में अवश्य एक तूफान आया होगा, सब दिग्भूत से सोचते रह गये होंगे, ‘अरे ! यह क्या ? इन्द्रभूति जैसा उद्भट विद्वान भी वर्धमान के इन्द्र जाल में फँस गया ? संभवतः उपस्थित सभी विद्वानों के मन में एक खलबली मची होगी और महावीर के प्रति उत्कट जिज्ञासा भी उठी होगी। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि इन्द्रभूति के पश्चात् यज्ञ मंडप में उपस्थित अग्निभूति, वायुभूति आदि अन्य दस महापंडित एक-एक करके अपने शिष्यों के साथ भगवान महावीर के समवसरण में आये, वाद विवाद किया, और अन्त में तर्क शुद्ध समाधान पाकर हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा को निछावर करके भगवान

महावीर के शिष्य बन गए ।<sup>१४</sup> भगवान महावीर के द्वितीय समवसरण में, एक ही दिन में इस प्रकार ग्यारह महापंडित एवं उनके चवदहसौ चवालीस शिष्यों ने दीक्षा धारण की, और भगवान महावीर ने वैसाख सुदी ११ को धर्मतीर्थ की स्थापना की ।<sup>१५</sup> इसी समय राजकुमारी चंदना जो कौशाम्बी में थी, भगवान महावीर का केवल ज्ञान संवाद सुनकर पावापुरी में पहुँची ।<sup>१६</sup> प्रभु के चरणों में दीक्षा की प्रार्थना की और अनेक राजकुमारियों व कुटुम्बिनियों के साथ उसने भी दीक्षा ग्रहण की, और वह साध्वी समुदाय में अग्रणी बनी ।<sup>१७</sup> संभवतः आर्या चन्दना की दीक्षा भी उस युग में एक सामाजिक तथा धार्मिक क्रांति का सूत्रपात था । चूँकि अब तक चली आई वैदिक परम्परा में प्रथम तो नारी को वेदाध्ययन एवं धार्मिक क्रिया काण्डों से दूर ही रखा गया था ।<sup>१८</sup> फिर गृहत्याग कर सन्यास ग्रहण करना तो प्रायः समाज-

२४. महाकुलाः महाप्राज्ञाः संविग्ना विश्ववंदिता ।

एकादशाऽपि तेऽभूवन्मूलशिष्या जगद्गुरोः ॥

—त्रिपष्टि० पर्व १० सर्ग ५

२५. श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार भगवान महावीर ने वैसाख शुक्ल ११ को महसेन वन में तीर्थ स्थापना की । जबकि दिगम्बर मान्यता इस सम्बन्ध में भिन्न विचार प्रस्तुत करती है । उनके अनुसार तीर्थकर महावीर के साथ गणधरों का समागम कैवल्य के दूसरे दिन पावापुरी में नहीं, किन्तु छियासठ दिन के बाद राजगृह में हुआ, और वहीं तीर्थ प्रवर्तन हुआ । देखिए कषायपाहुड की टीका पृ० ७६ । तीर्थ प्रवर्तन की तिथि भी श्रावण कृष्ण प्रतिपदा मानी गई है । देखिए—षट्खंडागम धवला पृ० ६३

२६. त्रिपष्टिशलाका० पर्व १० सर्ग ५

२७. कल्पसूत्र (सुबोधिका) सूत्र १३५ सूत्र ३५६

२८. देखिए—(क) शतपथ ब्राह्मण १३, २, २०, ४,

(ख) अस्वतंत्रा धर्म स्त्री—गौतम धर्मसूत्र १८, १

(ग) अस्वतंत्रा स्त्री पुरुष प्रधाना—वासिष्ठ ० ५, १

(घ) महाभारत, अनु० २०, १४,

(च) मनुस्मृति ९-३



विरोधी कार्य-सा ही था ।<sup>१९</sup> यही कारण है कि प्रारम्भ में कुछ वैदिक आचार्यों ने कुछ स्थितियों में स्त्री को सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दी थी ।<sup>२०</sup> किन्तु उत्तरवर्ती आचार्यों ने उसका कड़ा विरोध किया <sup>२१</sup> और उसे एक पाप कर्म तक की संज्ञा दी ।<sup>२२</sup> बौद्ध परम्परा भी प्रारम्भ में स्त्री को दीक्षा देने के प्रश्न पर इन्कार करती रही । आनन्द के अत्यधिक आग्रह पर बुद्ध ने सर्व प्रथम प्रजापति गौतमी को दीक्षा दी ।<sup>२३</sup>

२९. उत्तराध्ययन सूत्र में ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र ने नभिराजर्षि से कहा है—‘राजन् ! गृहवास घोर आश्रम है, तुम इसे छोड़कर दूसरे आश्रम में जाना चाहते हो, यह उचित नहीं ।’  
—उत्त० ९।४२-४४

इस सम्वाद से प्रकट होता है कि न केवल स्त्रियों के लिए, बल्कि पुरुषों के लिए भी गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ माना जाता था । वाशिष्ट धर्मशास्त्रकार ने तो सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम की ही श्रेष्ठता प्रतिपादित की है—

चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थश्च विशिष्यते

—वाशिष्ट धर्मसूत्र ८।१४

३०. महाभारत १२।२४५ ।

३१. स्मृतिचन्द्रिका व्यवहार पृ० २५४ में उद्धृत आचार्ययम का मंतव्य

३२. अत्रिस्मृति १३६-१३७,

३३. एक बार बुद्ध कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में रह रहे थे । उनकी मौसी प्रजापति गौतमी उनके पास आई और बोली—भंते ! अपने भिक्षु संघ में स्त्रियों को भी स्थान दें ।’ बुद्ध ने कहा—यह मुझे अच्छा नहीं लगता ।’ गौतमी ने दूसरी बार और तीसरी बार भी अपनी बात दुहराई पर उसका परिणाम कुछ भी नहीं आया ।

कुछ दिनों बाद जब बुद्ध वैशाली में विहार कर रहे थे, गौतमी भिक्षुणी का वेष बनाकर अनेक शाक्यस्त्रियों के साथ आराम में पहुँची । आनन्द ने उसका यह स्वरूप देखा । दीक्षा ग्रहण करने की आतुरता उस के प्रत्येक अवयव से टपक रही थी । आनन्द को दया आई । वह बुद्ध के पास पहुँचा और निवेदन किया—भंते ! स्त्रियों को भिक्षु संघ में स्थान दें ।’ दो तीन बार कहने पर भी कोई परिणाम नहीं निकला । अन्त में आनन्द ने कहा—‘यह महाप्रजापति गौतमी है, जिसने मातृ-वियोग में भगवान् को दूध पिलाया है, अतः इसे अवश्य प्रव्रज्या मिले ।’

अन्त में बुद्ध ने आनन्द के अनुरोध को माना, और कुछ नियमों के साथ उसे संघ में स्थान देने की आज्ञा दी ।

—विनय पिटक, चुल्लवग्ग, भिक्षुणी स्कन्धक—१०, १, ४

किन्तु जैन परम्परा में स्त्री की प्रव्रज्या के द्वार प्रारम्भ से ही उन्मुक्त कर दिये थे । भगवान्-ऋषभदेव की पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी इस अवसर्पिणी कालचक्र की आदि श्रमणी थी ।<sup>३४</sup> भगवान् अरिष्टनेमि के युग में तो वासुदेव श्री कृष्ण की पद्मावती आदि अनेक महारानियों के प्रव्रज्या ग्रहण का उल्लेख प्राप्त होता है ।<sup>३५</sup> नायाधम्मकहा,<sup>३६</sup> निरयावलियाओ,<sup>३७</sup> आदि में इस प्रकार की अनेक घटनाओं के उल्लेख हैं । जैन परम्परा ने प्रारंभ से ही धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर पुरुष तथा नारी को समान स्तर पर रखा । भगवान् महावीर ने भी सर्व प्रथम उस क्रांतिकारी कदम से वैचारिक जगत् के साथ सामाजिक जगत में नारी जागृति का एक नया साहसिक उदाहरण प्रस्तुत किया और आध्यात्मिक उत्क्रांति के लिए नारी जाति को आह्वान किया ।

आर्या चन्दना की प्रव्रज्या के बाद अनेक स्त्री पुरुषों ने जो कि भगवान् महावीर के उपदेश से प्रबुद्ध हुए थे, किन्तु प्रव्रज्या ग्रहण करने में स्वयं को असमर्थ समझ रहे थे, उन्होंने श्रावक के व्रत ग्रहण किए ।<sup>३८</sup>

स्थानांग<sup>३९</sup> तथा भगवती<sup>४०</sup> आदि में बताया गया है कि श्रमण, श्रमणी, श्रावक (श्रमणोपासक) एवं श्राविका (श्रमणोपासिका) यह तीर्थ के चार अंग हैं । इन्हीं से चतुर्विध संघ का रूप बनता है । उस चतुर्विध संघ की स्थापना भी भगवान् महावीर ने इसी महर्सेन वन में की ।

३४. जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति ३ ।

३५. अंतगढ सूत्र, वर्ग ६, ७, ८,

३६. नायाधम्मकहा : २-१-२२२,

३७. (क) निरयावलिया ४ वर्ग, (ख) आवश्यक चूर्णि २८६, २९१,

३८. त्रिषष्टिशलाका० १० । ५,

३९. स्थानांग ४ । ३

४०. तित्थं पुण चाउवन्नाइन्ने समण संघो—समणा, समणीओ सावया, सावियाओ ।

—भगवती सूत्र शतक २०, उ० ८ सूत्र ६८२

संघ स्थापना के पश्चात् भगवान महावीर ने इन्द्रभूति आदि प्रमुख शिष्यों को सम्बोधित करके त्रिपदी <sup>४१</sup> का उपदेश किया। जिसे सूत्र रूप में प्राप्त कर गणधरों ने उसकी विशाल व्याख्या के रूप में द्वादशांगी (१४ पूर्वों से युक्त) की रचना की। <sup>४२</sup>



- 
४१. (क) उप्पन्ने, विगए, परिणए—भगवती ५।९  
 (ख) उप्पन्न विगय धुवपय तियम्मि कहिए जिणेण तो तेहिं ।  
 सव्वेहिं वि य बुद्धीहिं बारस अंगाइं रइयाइं ॥  
 —महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) पत्र ६९-२  
 (ग) जाते संघे चतुर्वेवं ध्रौव्योत्पाद व्ययात्मिकाम् ।  
 इन्द्रभूतिं प्रभूतानां त्रिपदीं व्याहरत् प्रभुः ॥  
 —त्रिषष्टि० १०।५
४२. (क) त्रिषष्टि ० १०।५।१६५  
 (ख) महावीर चरियं (गुणचंद्र) प्रस्ताव ८ पत्र २५७-२  
 (ग) दर्शन-रत्न-रत्नाकर, पत्र ४०३-१

## व्यक्तित्व दर्शन

- श्रमण : समता का प्रतीक ●
- बाह्य व्यक्तित्व ●
- सुन्दरता : एक पुण्य प्रकृति ●
- शरीर की ऊँचाई और संहनन ●
- मधुर व्यवहार ●
- तपः साधना ●
- स्वावलम्बी श्रमण ●
- दिनचर्या ●
- दीप्त तपस्वी ●
- उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी ●
- विदेहभाव ●
- तपोलब्धि ●
- गौतम की ज्ञान संपदा ●
- मानसज्ञानी ●
- विनम्रता की मूर्ति ●
- सरलता का अक्षय स्रोत ●
- मधुर आतिथ्य ●
- निर्भीक शिक्षक ●
- कुशल उपदेष्टा ●
- प्रबुद्ध संदेशवाहक ●
- अनन्य प्रभु भक्त ●
- मुक्ति का वरदान ●
- महान् जिज्ञासु ●
- सराग उपासना ●
- पावा में अंतिम वर्षावास ●
- कैवल्य एवं निर्वाण ●



## व्यक्तित्व दर्शन

### श्रमण : समता का प्रतीक



इन्द्रभूति गौतम का तलस्पर्शी ज्ञान गांभीर्य अपने आप में जिस रिक्तता का अनुभव कर रहा था, उसकी पूर्ति भगवान महावीर की हृदयस्पर्शी वाणी ने कर दी। गौतम अब अपने पांडित्य की कृतकृत्यता अनुभव कर रहे थे। वे शुष्क क्रिया काण्ड से मुक्त होकर आत्मसंयम एवं आत्मनिदिध्यासन के आनन्द मार्ग की ओर बढ़ चुके थे। भगवान महावीर ने उनके मन की कुण्ठाओं को तोड़कर जिस विशद ज्ञान की कुंजी रूप त्रिपदी का ज्ञान उन्हें दिया, उससे गौतम के अन्तस् का समस्त अन्धकार दूर हुआ और एक दिव्य प्रकाश सर्वत्र बिखर गया। जिस प्रकार सूर्य के अनन्त आलोक को कोई सघन कृष्ण आवरण रोक रहा हो, और वह जैसे ही हट जाये वैसे ही अन्धकार के स्थान पर प्रकाश व्याप्त हो जाये ऐसा ही कुछ गणधर गौतम के समक्ष हुआ। वेद उपनिषद् आदि चतुर्दश विद्याओं का पारगामी अध्ययन कर लेने पर भी वे अपने आप को किसी अन्धकार में भटकते हुए अनुभव कर रहे थे, हृदय में एक रिक्तता, जीवन में एक शून्यता अनुभव कर रहे थे। भगवान महावीर ने प्रथम परिचय में ही गौतम के हृदय को टटोललिया, उनकी आत्मा की धड़कन को पहचाना और श्रुत-शील के माधुर्य पूर्ण मार्ग का उपदेश दिया। गौतम के पास ज्ञान की कमी नहीं थी, किन्तु दृष्टि पर एक आवरण था, ऐकान्तिक आग्रह था। चारित्र के

नाम पर तो उनके पास केवल स्नान, पूजन यज्ञ-याग आदि नीरस क्रियाकाण्ड ही था। भगवान महावीर के चिन्तन पूर्ण वचनों से उनका ऐकान्तिक आग्रह टूटा, स्याद्वाद की अनेकान्त दृष्टि प्राप्त हुई और सामायिक आदि चारित्र का स्वात्म-लक्षी मार्ग भी मिला। आचार्य भद्रबाहु के उल्लेखनुसार भगवान महावीर ने अपना पहला उपदेश सामायिक चारित्र का दिया,<sup>१</sup> और उसी उपदेश से गौतम ने सम्पूर्ण चारित्र सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस उल्लेख का महत्व इस दृष्टि से भी है, कि ब्राह्मण एवं श्रमण संस्कृति में सामायिक-अर्थात् 'समता' एक महत्वपूर्ण विभाजक रेखा थी। ब्राह्मण संस्कृति में जहाँ ज्ञानोन्माद, जातीयगर्व, वार्णिक श्रेष्ठता आदि के अहंकार से परिप्लुत वर्ग रात-दिन हिंसा प्रधान क्रिया काण्ड में संलग्न रहता था, वहाँ श्रमण संस्कृति का मूल स्वर था 'समयाए समणो होई'<sup>२</sup> समता के आचरण से ही श्रमण कहलाता है। श्रमण शब्द की व्याख्या भी इसी समत्व भावना को लेकर की गई है—'सम मणई तेण सो समणो'<sup>३</sup> जिसका मन सम होता है वह श्रमण है। सामायिक का भी यही अर्थ है कि—'जिसकी आत्मा संयम, नियम एवं तप में समाहित होगई है शान्ति को प्राप्त कर रही है, उसी को वस्तुतः सामायिक होती है।'<sup>४</sup> कहना नहीं होगा, भगवान महावीर के इस समता धर्म का आश्चर्यजनक प्रभाव इन्द्रभूति के मन पर हुआ। उन्हें जीवन की एक अपूर्व स्थिति प्राप्त हो गई, एक ऐसा आत्मानन्द का शान्त मार्ग मिला, जिसमें कहीं कोई कटुता, द्वेष एवं वैमनस्य की उष्मा तक नहीं थी। यही कारण है कि गौतम जैसा महान् पण्डित, विश्व विश्रुत तार्किक जब आत्म शान्ति के मार्ग का दर्शन कर पाया तो अपने समस्त पूर्व परिकल्पित आग्रहों, एवं क्रिया काण्डों को यों त्याग आया जैसे साँप कँचुली का त्याग कर देता है—महानागोव्व कंचुयं—<sup>५</sup> और साधना के कठोरतम मार्ग पर सर्वात्मना समर्पित हो गया।

१. आवश्यक नियुक्ति गाथा ७३३-३५, ७४२-४५-४८

२. उत्तराध्ययन २५/३२

३. दशवैकालिक नियुक्ति गा. १५४

यही गाथा अनुयोग द्वार १२९ में आई है।

४. जस्स सामाणिओ अप्पा संजमे णियमे तवे।

तस्स सामाइयं होइ इइ केवलभासियं।

५. उत्तरा० १९।८७

—अनुयोग द्वार १२७ नियमसार १२७

## बाह्य व्यक्तित्व

जैसा पूर्व लिखा जा चुका है—इन्द्रभूति गौतम के सम्बन्ध में भगवती सूत्र के प्रारम्भ में एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिचय दिया गया है। ठीक वही शब्दावली उपासक दशा<sup>६</sup> औपपातिक सूत्र<sup>७</sup> में उद्धृत की गई है। उस परिचय से ज्ञात होता है कि गौतम जितने बड़े तत्त्वज्ञानी थे, उतने ही बड़े साधक भी। श्रुत एवं शील की पवित्र धारा से उनकी आत्मा सम्पूर्ण रूप के परिप्लावित हो रही थी। एक और वे उग्र तपस्वी घोर तपस्वी जैसे विशेषणों से विभूषित किये जाते हैं, तो दूसरी ओर 'सव्वखर सन्निवाई' वर्णमाला के समस्त अक्षर संयोगों के विज्ञाता, समस्त वाङ्मय के अधिकृत ज्ञाता भी बताये गये हैं। उनके तत्त्वज्ञान एवं साधक जीवन की स्वर्णिम रेखाओं को अंकित करने से पूर्व हम गणधर गौतम के बाह्य व्यक्तित्व का सामान्य परिचय भी भगवती सूत्र की शब्दावली से प्राप्त कर लेते हैं।

## सुन्दरता : एक पुण्योपलब्धि

मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि किसी भी व्यक्तित्व का अन्तरंग दर्शन करने से पूर्व ही दर्शक पर उसके बाह्य व्यक्तित्व (Personality) का प्रभाव पड़ता है। प्रथम दर्शन में ही यदि व्यक्ति प्रभावित हो जाता है तो उसके भावीसम्पर्क भी उस व्यक्तित्व से अवश्य प्रभावित रहते हैं। गुजराती में कहावत है—“जेना जोया नथी मरता तेना मार्यां सूं मरै”—परिचय एवं प्रभाव की दृष्टि से पहला सम्पर्क ही महत्वपूर्ण माना जाता है। यदि व्यक्ति के चेहरे पर ओज, प्रभाव चमक रहा हो, उसकी आकृति में सौन्दर्य छलक रहा हो, आँखों में तेज, मुख पर मंदस्मित, शारीरिक गठन की सुभ्यता और सुन्दरता हो तो भले ही उस व्यक्तित्व की गहराई में कुछ हो या न हो, पर उसका पहला दर्शन व्यक्ति को अवश्य ही प्रभावित कर देता है। यदि बाह्य सुन्दरता के साथ आन्तरिक सौन्दर्य भी परिपूर्ण हो तो वहाँ 'सोने में सुगन्ध' की उक्ति चरितार्थ हो जाती है। यही कारण है कि संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उनका बाह्य व्यक्तित्व भी प्रायः आकर्षक एवं प्रभावशाली रहा

६. उपासक दशा १।७६

७. औपपातिक सूत्र ३७ (सुत्तागमे) द्वितीय खण्ड, पृ० २४



है। जैन परम्परा में तिरसठ शलाका पुरुष (महापुरुष) हुए हैं, उन सबका शारीरिक संगठन, संस्थान, आकार अत्युत्तम होता है।<sup>८</sup> उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्ण रेखा जैसी होती है।<sup>९</sup> औपपातिक सूत्र में विस्तार के साथ भगवान महावीर के बाहरी व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है, वहाँ बताया है कि उनकी आँखें पद्मकमल के समान विकसित, ललाट अर्ध चन्द्र के समान दीप्तियुक्त थे। वृषभ के समान मांसल स्कन्ध थे। भुजाएँ लम्बी थीं। पूरा शरीर सुगठित एवं सुन्दर आकार वाला था—प्रज्वलित निर्धूम अग्नि की शिखा के समान तेजस्वी था। जिसे देखते ही मन मुग्ध हो जाता, आँखें बार-बार देखने को लालायित होतीं और दर्शन के साथ ही मन में प्रियता एवं भव्यता का भाव जाग पड़ता।<sup>१०</sup> इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में मगध सम्राट श्रेणिक अनाथी मुनि के प्रथम दर्शन (समागम) से प्रभावित हुआ था। अनाथी मुनि नानाकुसुमों से आच्छादित मण्डीकुक्षी उद्यान के घने वृक्षों की शीतल छाया में साधनारत बैठे थे। उनकी आकृति सुकोमल एवं भव्य थी। तारुण्य के ओज के साथ मुख मण्डल से असीम शान्ति टपक रही थी। वन क्रीड़ा के लिए आये हुए मगधराज श्रेणिक ने ज्यों ही उन्हें देखा, तो मुख से यह स्वर लहरी-फूट पड़ी—“कैसा वर्ण ! कैसा रूप ! इस आर्य की कैसी सौम्यता ! कैसी इसकी क्षमा ! कैसा इसका त्याग ! कैसी इनकी भोग निस्पृहता।”<sup>११</sup> जैन सूत्रों में आचार्य की आठ सम्पदा बतलाई गई हैं उसमें (शरीर सम्पदा) रूपसम्पदा<sup>१२</sup> भी एक प्रमुख सम्पदा मानी गई है। रूपवान होना आचार्य का एक अतिशय है। महाकवि अश्वघोष ने बुद्ध के शारीरिक सुगठन, सौन्दर्य एवं प्रभविष्णुता का वर्णन करते हुए लिखा है—उस तेजस्वी मनोहर

८. (क) प्रज्ञापना सूत्र २३,

(ख) त्रिषष्टि शलाका०

९. हारिभाद्रीयावश्यक, प्रथम भाग गा. ३१२-३३

१०. अवदालिय पुण्डरीयणयणे.....चन्द्रद्वसमणिडाले-वरमहिस-वराह-सीह सहल उसभ नागवरपडिपुण्ण विउल वखंधे.....औपपातिक सूत्र १

११. अहोवण्णो अहो रुवं, अहो अज्जस्स सोमया।

अहो खन्ती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र, अ० २०, गा. ६

१२. दशाश्रुतस्कन्ध ४. स्थानांग ८.

रूप को जिसने देखा उसकी आँखें उसी में बँध गई।<sup>१३</sup> उसे देखकर राजगृह की लक्ष्मी भी संक्षुब्ध हो गई।<sup>१४</sup> जैन कर्म सिद्धान्त में शुभनाम कर्म की बयालीस प्रकृतियाँ बताई गई हैं। वहाँ बताया है—“शारीरिक तेज, सुन्दरता, उपयुक्त गठन, परिपूर्ण अंगोपांग ये सब पुण्य के उदय से ही प्राप्त होती हैं।<sup>१५</sup> जैन दर्शन, दर्शन की दृष्टि से भले ही बाहरी रूपरंग को महत्व न देता हो, किन्तु उसकी प्रभाविकता एवं भव्यता से तो इन्कार नहीं करता, वह सुन्दरता को एक पुण्योपलब्धि मानता है और यह—भी मानता है कि हर महापुरुष शारीरिक सुन्दरता से परिपूर्ण होते हैं। उनके बाहरी रूप दर्शन में भी किसी प्रकार की कमी नहीं होती। यही सिद्धान्त हमें गणधर गौतम के बाहरी व्यक्तित्व में दिखलाई पड़ता है।

### शरीर की ऊँचाई और संहनन

शरीर की लम्बाई जितनी भगवान महावीर की थी उतनी ही गणधर गौतम की थी। उनके लिए भगवती में—“सत्तुसेहे” शब्द आया है जिस पर टीकाकार ने लिखा है—“सप्तहस्तोच्छ्रयः” सात हाथ ऊँचा उनका कद था और वह ‘समचउ-रंससंठाण संठिए’ समचतुरस्र संस्थान से संस्थित था। यह बताया जा चुका है कि जितने भी तीर्थंकर, चक्रवर्ती वामुदेव बलदेव आदि शलाका पुरुष होते हैं उनका संस्थान यही होता है। समचतुरस्र—का शाब्दिक अर्थ है पुरुष जब सुखासन (पालथी लगाकर) से बैठता है तो उसके दोनों घुटनों का और दोनों बाहुमूल-स्कन्धों का अन्तर (दायां घुटना, बायां स्कन्ध, बायां घुटना दायां स्कन्ध) इन चारों का बराबर अन्तर रहे वह समचतुरस्र संस्थान कहलाता है। आचार्य अभयदेव ने बताया है—‘जो आकार सामुद्रिक आदि लक्षण शास्त्रों के अनुसार सर्वथा योग्य हो वह समचतुरस्र कहलाता है।<sup>१६</sup> इन्द्रभूति का देहमान, ऊपर नीचे का भाग समान था और वह दीखने में सुन्दर

१३. यदेव यस्तस्य ददर्श तत्र तदेव तस्याथ बबन्ध चक्षुः— बुद्ध चरित १०।८

१४. ज्वलच्छरीरं शुभ जालहस्तम्  
संचुक्षुभे राजगृहस्य लक्ष्मीः—

बुद्ध० १०।९

१५. (क) ज्ञापना २३.

(ख) कर्मग्रन्थ

१६. शरीर लक्षणोक्तप्रमाणाऽविसंवादिन्यश्चतस्रो यस्य तत् समचतुरस्रम् ।

—भगवती (टीका) १।१

प्रतीत होता था। इन्द्रभूति के शरीर का आन्तरिक गठन बहुत ही सुदृढ़ एवं परस्पर सम्बद्ध था। शरीर के भीतरी 'अस्थि संघटन'<sup>१०</sup> के लिए जैन कर्म सिद्धान्त में 'संहनन' शब्द का प्रयोग हुआ है। छह प्रकार के 'संहनन' बताये गये हैं जिनमें सर्वश्रेष्ठ संहनन है—वज्रऋषभनाराच संहनन।<sup>१८</sup> इन्द्रभूति का संहनन भी 'वज्रऋषभ नाराच' था। इसका सामान्य अर्थ यह समझना चाहिए कि इन्द्रभूति का शारीरिक बल, भार उठाने की क्षमता, हड्डियों की संघटना सौष्ठव आदि भी उत्तम थी। शारीरिक गठन की सुन्दरता के साथ ही उनके मुख, नयन, ललाट आदि पर अद्भुत ओज एवं चमक थी। जिस प्रकार कसोटी पत्थर पर सोने की रेखा खींच देने से वह उस पर चमकती रहती है, उसी प्रकार की सुनहली आभा गौतम के मुख पर सतत दमकती रहती थी। उनका वर्ण गौर था, कमल की केसर की भाँति उसमें गुलाबी मोहकता भी थी। पचास वर्ष की अवस्था होने पर भी उनके मुख व आँखों पर किसी प्रकार की विवर्णता नहीं आई थी बल्कि तपःसाधना करने से उनके तेज में और अधिक निखार आने लगा। जब उनके ललाट पर सूर्य की किरणें गिरती तो ऐसा लगता होगा कि कोई सीसा या पारदर्शी पत्थर चमक रहा है। जब गौतम चलते तो उनकी दृष्टि इधर उधर से हटकर सामने के मार्ग पर टिक जाती और स्थिर दृष्टि से भूमि को देखते हुए चलते। उनकी गति बड़ी शान्त, चंचलता रहित, एवं अंसभ्रान्त थी<sup>१९</sup> जिसे देखकर सहज ही में दर्शक उनकी स्थितप्रज्ञता का अनुमान लगा सकता था।

उनका व्यवहार बड़ा मधुर एवं विनयपूर्ण था। वे जब किसी कार्य वश बाहर जाते तो भगवान महावीर की आज्ञा लेते, आते तो पुनः उनके पास जाकर अपनी कार्य सम्पन्नता की सूचना देकर फिर किसी कार्य में लगते।<sup>२०</sup> बड़े-बड़े तपस्वी साधकों के लिए भी साधना, विनय एवं व्यवहार में गौतम स्वामी का उदाहरण

१७. संघयणमट्टिनिचओ—कर्मग्रन्थ भा० १ गा० ३७

१८. (क) प्रज्ञापना सूत्र पद २३. सू० २६३। (ख) स्थानांग ६।३ (ग) कर्मग्रन्थ भा० १ गा० ३८

१९. अतुरियमचवलमसंभेतं जुगंतरपरिलोयणाए दिट्ठिए पुरओ इरियं सोहेमाणे।

—उपासक दशा १। सूत्र ७८

२०. उपासकदशा १। सूत्र ७७

दिया जाता था।<sup>११</sup> अंतकृद् दशा सूत्र<sup>१२</sup> में राजकुमार अतिमुक्तक के साथ इन्द्रभूति गौतम का जो वार्तालाप एवं व्यवहार प्रदर्शित किया गया है उससे पता चलता है कि इतना बड़ा तत्त्वज्ञानी साधक छोटे अबोध बच्चों के साथ भी कितनी मधुरता एवं आत्मीय भावना के साथ व्यवहार करता है। राजाओं के अन्तःपुर में वे भिक्षा के लिए जाते हैं, तो वहाँ उनकी रानियों एवं दास-दासियों के साथ भी उनका व्यवहार-वर्तन बहुत ही विवेक पूर्ण एवं स्नेहसिक्त होता है।<sup>१३</sup> इन्द्रभूति गौतम के प्रभावशाली आकर्षक व्यक्तित्व के ये जो कुछ रूप आगमों के अनुशीलन से प्राप्त होते हैं उनसे ज्ञात होता है कि गौतम का आन्तरिक व्यक्तित्व जितना गम्भीर, प्रौढ़ एवं विराट् था बाह्य व्यक्तित्व भी उतना ही मधुर एवं चुम्बकीय था। शारीरिक सौष्ठव, लालित्य एवं व्यवहार कुशलता के कारण गौतम के प्रथम दर्शन में ही सम्पर्क में आने वाला उनके अति निकट का आत्मीय बन जाता और श्रद्धा से पूर्ण हृदय को खोलकर उनके चरणों में रख देता।

### तपः साधना



आकर्षक व्यक्तित्व के धनी इन्द्रभूति गौतम के अंतरंग व्यक्तित्व की गहराई में उतरने से पूर्व उनके तपःपूत जीवन की एक सामान्य झांकी भी प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। भगवती, उपासगदशा तथा औपपातिक सूत्र आदि में गौतम के बाह्य दर्शन के आगे जो उनके आन्तरिक तपस्वी जीवन की स्वर्णिम रेखायें खींची गई हैं वे बहुत ही अर्थपूर्ण एवं विशिष्ट तपः साधना की द्योतक हैं। उनके लिए प्रयुक्त विशेषणों पर<sup>१४</sup> विचार करने से लगता है कि भगवान महावीर के शासन में

२१. जहा गोयम सामी—अनुत्तरोपपातिक (धन्य अणगार वर्णन)

देखिए—का चित्रण

२२. अंतकृद्दशा वर्ग

२३. विपाकसूत्र १। मृगादेवी के साथ वार्तालाप का चित्रण

२४. उगगतवे, दित्ततवे, घोरतवे, महातवे, उराले, घोर गुरो, घोर तवस्सी, घोर बंभचेरवासी उच्छूढसरीरे, संखित्तविउल तेउलेस्से, छट्ठु-छट्ठुणं अणि-क्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे माणे विहरई।

—उपासग दशा १।७६

सर्वोत्कृष्ट तपःसाधना करने वाले धन्य अणगार<sup>२५</sup> से गौतम की साधना किसी प्रकार कम नहीं थी। वे बहुत बड़े साधक एवं तपस्वी थे जिन पर भगवान महावीर के विशाल श्रमणसंघ को गौरव था और उन्हें आदर्श माना जाता था। गौतम ने जीवन के प्रारम्भ में ज्ञान एवं श्रुत की आराधना की और उसके चरम शिखर तक पहुँचे। छद्मस्थ साधक के ज्ञान की अन्तिम रेखा का स्पर्श करने वाले गौतम जो पहले चतुर्दश विद्याओं के पारगामी थे, भगवान महावीर के शिष्य बनकर चतुर्दश पूर्व के पारंगत बने और पश्चात् अपने जीवन को तपः साधना में संलग्न कर निरन्तर तपः ज्योति प्रज्वलित करते रहे। वे दो दिन उपवास करते, एक दिन भोजन, भोजन में भी सिर्फ एक समय दिन के तीसरे पहर में स्वयं भिक्षा पात्र लेकर सामान्य कुलों में एक साधारण भिक्षुक की तरह घूमते, और सूखा-रूखा जो भी प्रासुक आहार प्राप्त हो जाता उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते, फिर भगवान महावीर के निकट आकर अपनी भिक्षा उन्हें बतलाते, पारणे की आज्ञा लेकर अपने अन्य साधर्मि जो कि सभी गौतम से लघु थे उन्हें भोजन के लिए प्रेम पूर्वक निमंत्रित करते—**साहु हुज्जामि तारिओ !**<sup>२६</sup> अच्छा हो, आप लोग मेरे भोजन को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें” अपने छोटे साधुओं और शिष्यों के साथ इस प्रकार का विनय एवं प्रेम भरा व्यवहार गौतम का ही नहीं, धीरे धीरे सम्पूर्ण श्रमण संघ का आदर्श बन गया था। गौतम उस यथाप्राप्त भोजन से देह का उसी प्रकार पोषण करते थे जिस प्रकार कोई किराये के घर में रहने वाला अपनत्व से रहित भाव के साथ उसका किराया देता हो। गौतम की इस अनासक्ति के लिए आगमों में **बिलमिव पन्नगभूए** की उपमा आती है, साँप जैसे बिल में चुपचाप प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार गौतम अनासक्ति पूर्वक भोजन को गले उतार लेते और पुनः अपने स्वाध्याय में लीन हो जाते।

२५. राजगृह में श्रेणिक द्वारा सर्वश्रेष्ठ तपस्वी साधक के विषय में पूछने पर भगवान महावीर कहते हैं—

इमेसि चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे  
महादुक्करकारए चेव महानिज्जर तराए चेव ।

—अनुत्तरो० ३।३९

इन्हीं धन्य अणगार की तपश्चर्या, एवं साधना विधि का वर्णन करते समय कहा गया है—.....पढमाए पोरिसीए सज्जायं करेइ, जहा गीयम सामी....

अनुत्तरो० ३।९

२६. दशवैकालिक ५ ।

## स्वावलंबी श्रमण

उपयुक्त विवरण से गौतम की अन्य विशिष्टताओं के साथ उनके स्वावलंबन की एक स्पष्ट तस्वीर हमारे सामने खिंच आती है। जो गौतम अपने पूर्व जीवन में भारतखण्ड के मूर्धन्यविद्वान माने जाते थे, पाँच-सौ शिष्य प्रतिक्षण उनके चरणों में करबद्ध खड़े रहते, हजारों जिज्ञासु जिनके पास प्रश्नोत्तर के लिए आते और शंका समाधान कर प्रसन्न होकर लौटते, वे इन्द्रभूति गौतम जब भगवान महावीर के शिष्य बने, समस्त श्रमणसंघ में प्रथम स्थान पर आए, पाँच-सौ उनके स्वयं के शिष्य एवं अन्य सभी चवदह हजार श्रमण उन्हें अपना वंदनीय, अर्हणीय एवं आदर्श समझते थे। वे गौतम भी जब आहार की आवश्यकता होती है तो स्वयं अपने हाथ से अपने भाजन (पात्र) एवं वस्त्र आदि की प्रतिलेखना करते हैं—**भायण वत्थाइ पडिलेहेइ**<sup>१७</sup>—और स्वयं ही भगवान महावीर की आज्ञा लेकर घर-घर में भिक्षाटन करते हैं।<sup>१८</sup> गौतम का यह स्वावलंबन वस्तुतः उनके लिए कोई महत्वपूर्ण न रहा हो, किन्तु श्रमणसंघ के लिए एक दिशा दर्शक था 'अपना कार्य स्वयं करो' इस भावना का प्रबल समर्थक था। और स्वावलंबन में श्रमण शब्द की कृतार्थता का द्योतक था।

## दिनचर्या

गौतम की चर्याविधि का वर्णन करते हुए आगमों में बताया है—गौतम स्वामी प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते थे, द्वितीय प्रहर में ध्यान करते थे और दिन के तृतीय प्रहर अर्थात् मध्याह्नोत्तर में भिक्षा के लिए स्वयं श्रमण करते थे। भिक्षा भोजन आदि कार्य के लिए एक प्रहर समय से अधिक नहीं लगाते। चौथे प्रहर में फिर स्वाध्याय में लग जाते। रात्रि में पुनः प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, द्वितीय प्रहर में ध्यान तृतीय में नींद और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय।<sup>१९</sup> उस युग में सामान्यतः जैन श्रमण की

१७. उवासग दशा १।७७

१८. उच्चनीय-मज्झिम कुलाई घर समुदाणस्स भिक्षायरियाए अड्ड

उवासग दशा १।७८

१९. उत्तराध्ययन २५।१२।१८

यही समाचारी थी ऐसा उत्तराध्ययन आदि आगमों से प्रतीत होता है। एक प्रहर की नींद सामान्य व्यक्ति के लिये अपर्याप्त है, किन्तु उस समय जिस प्रकार के शरीर संगठन, बल, क्षमता आदि के वर्णन मिलते हैं उसमें उनके स्वास्थ्य की सहन-क्षमता भी सुदृढ़ होनी चाहिए और उसी दृष्टि से हो सकता है यह सभी सामान्य श्रमणों की चर्या विधि रही हो। किन्तु धीरे धीरे और बहुत ही अल्प समय में जब परिस्थितियाँ बदली, शारीरिक क्षमताओं में अन्तर आया तो जैन श्रमण ऐसे भी नहीं थे कि लकीर के फकीर बने रहे। आचार्य शय्यभ्रम द्वारा संकलित दशैकालिक में भिक्षा का समय बदलने के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश है कि—“भिक्षु ! गृहस्थ के घर पर भिक्षा का उपयुक्त समय देखकर ही जाये, यदि अकाल—असमय में उसके घर पर जाएगा तो भिक्षा भी प्राप्त न होगी जिससे स्वयं उसे भी क्लेश होगा और गृहस्थ को भी लज्जा का अनुभव होगा।”<sup>३०</sup> वृहत्कल्प सूत्र में भी प्रथम एवं चरम प्रहर की भिक्षाचरी का समर्थन किया गया।<sup>३१</sup> और नियुक्ति काल में आने तक तो दो एवं तीन बार की भिक्षा विधि भी मान्य हो चुकी थी।<sup>३२</sup> इसी प्रकार निद्राविधि भी एक प्रहर के स्थान पर बिचके दो प्रहर की मान ली गई।<sup>३३</sup> समयानुसार आचार विधि में परिवर्तन करना जैन श्रमणों एवं आचार्यों की समयज्ञता का सूचक है, इसे दुर्बलता नहीं माना जा सकता। चूँकि जैन धर्म अनेकांतवादी हैं, उत्सर्ग-अपवाद मार्ग में विश्वास करता है। वहाँ कहा गया है—**खेत्तं कालं च विन्नाय तहप्पाणं निउंजए**<sup>३४</sup> क्षेत्र, समय एवं क्षमता आदि को देखकर शक्ति का नियोजन करना चाहिए। “जिन शासन में किसी विधि का एकांत निषेध भी नहीं है और न एकांत विधान ही है। परिस्थिति को देखकर ही निषेध या विधान किया जाता है जैसा कि रोग में चिकित्सा के लिए।”<sup>३५</sup> अस्तु, गौतम स्वामी

३०. अकाले चरसि भिक्खू, कालं न पडिलेहसि ?  
अप्पाणं च किलामेसि, सन्निवेसं च गरिहसि ।

—दशर्व ५।२।१५

३१. वृहत्कल्प ५।६  
३२. ओघनियुक्ति भाष्य गा. १४९  
३३. ओघनियुक्ति गा. ६६०  
३४. दशर्वकालिक ५१  
३५. एगंतेण निसेहो जोगेसु न देसिओ विहीवाऽवि ।  
दलियं पप्प निसेहो होज्ज विही वा जहा रोगे ।

—ओघनियुक्ति ५५

की कठोर चर्या वर्तमान में यदि जैन श्रमणों के लिये दुष्कर एवं दुष्पात्य है तो उसके लिए श्रमणों की दुर्बलता का पक्ष नहीं देखकर उनकी समयज्ञता एवं विधि-निषेध मार्ग व्यवस्था को देखना चाहिये। आज भी 'गौतम स्वामी की करणी' एक उच्चतम क्रिया-पात्रता का सूचक है। साथ में यह भी ध्वनित होता है कि एक महान् तत्त्वज्ञानी मात्र ज्ञान के सागर के और छोर को नापने में ही 'अलं' नहीं रहा, किन्तु आचार क्रिया का भी उच्चतम उदाहरण बन कर हजारों वर्ष के बाद आज भी जगमगा रहा है। उन्होंने जीवन भर बूले-बूले तक पारणा किया और पारणे में भी केवल एक समय भोजन। गौतम की लम्बी तपश्चर्या का वर्णन सूत्रों में नहीं मिलता है, किन्तु बेले-बेले के तप की दीर्घकालीन साधना और उसकी महिमा को देखते हुए लगता है यह किसी कठोर दीर्घ तपस्या से कम उग्र नहीं थी। इसीलिए आगमों में गौतम को 'उगगतवे घोरतवे' आदि विभूषणों से अलंकृत किया गया है। भगवती सूत्र के टीकाकार अभयदेव सूरि ने उक्त शब्दों पर टीका करते हुए लिखा है—जिस तपश्चरण की आराधना सामान्य जन के लिए अत्यंत कठोर हो, यहाँ तक कि वे उसको कल्पना भी नहीं कर सकते ऐसे तपश्चरण को उग्रतप कहा जाता है।<sup>३६</sup>

गौतम की तपश्चर्या के साथ शांति एवं सहिष्णुता का मणिकांचन संयोग था। इस शांति के कारण ही तपः ज्योति से उनका मुख मंडल सतत प्रभास्वर रहता था। तपस् की दीप्ति उनके शरीर पर छिटकती रहती इसी कारण उनके लिए 'दित्त तवे' विशेषण भी उपयुक्त है। 'दित्त तवे' का अर्थ यह भी किया जाता है—तप के द्वारा उन्होंने अपने कर्म वन को भस्म कर डाला था। और इसी बात को विशेष बलपूर्वक बताने के लिए 'तत्ततवे' महातवे' आदि विशेषण आये हैं। उन्होंने तप से अपने अन्तर मल को तपा डाला था। जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि में तप कर निखर जाता है, और समस्त मलिनता दूर हो जाती है, उसी प्रकार गौतम ने तप कर आत्मज्योति को निखारा था। उस तप में किसी प्रकार की कामना, आशंसा, परलोक की वितृष्णा एवं यशःकीर्ति की अभिलाषा नहीं थी।<sup>३७</sup> वे केवल आत्म शोधन के लिए तप करते रहे। कर्म निर्जरा ही उनके तपश्चरण का एक एवं अंतिम ध्येय था 'नन्तत्थ निज्जरदुयाए

३६. यदन्येन प्राकृतपुंसा न शक्यते चिन्तयितुमपि तदविधेन तपसा युक्तः।

—भगवती वृत्ति १।१ पृ० ३५

३७. 'महातवे'—त्ति आशंसा दोष रहितत्वात् प्रशस्ततपाः।

—भगवती वृत्ति १।१ पृ० ३५



तव महिद्विज्जा”<sup>१८</sup> भगवान् महावीर का यह संदेश ही उनकी समस्त तपः साधना का मूल था । दूसरे कोई गौतम के कठोर तपश्चरण की चर्चा करते तो वे रोमांचित हो जाते, इसलिए उनके तप को ‘घोरतप’ कहा गया है ।

### ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी



घोर तपस्वी के साथ-साथ गौतम के लिए ‘घोरवन्भचेरवासी’ भी एक विशेषण आता है । और यह विशेषण किसी न किसी विशिष्टता का द्योतक भी हो सकता है । साधारणतः ‘घोर’ शब्द ‘रुद्र’ अर्थ में प्रयुक्त होता है ।<sup>१९</sup> किन्तु जब उसके साथ घोर तप, घोर गुण, घोर ब्रह्मचर्य आदि विशेषण लग जाते हैं तो अर्थ में प्रसंगानुसार अन्तर भी आ जाता है । उत्तराध्ययन ९ में शकेन्द्र जब नमिरार्जपि को गृहस्थाश्रम में रहने की बात कहता है तो वहाँ ‘घोरासमं’ घोर-आश्रम शब्द का प्रयोग गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता का द्योतक भी बन गया है । सामान्यतः ब्रह्मचर्य को अन्य व्रतों से कठोर माना गया है । साधारण मनुष्य उसकी आराधना कर सकने में समर्थ नहीं हो पाते<sup>२०</sup> इस आशय से ब्रह्मचर्य के साथ ‘घोर ब्रह्मचर्य’ शब्द का प्रयोग भी आगमों में कई स्थानों पर हुआ है ।<sup>२१</sup> गौतम के प्रकरण में भी ‘घोर’ शब्द व्रत की कठोरता, दुष्पाल्यता के साथ विशिष्टता का भी द्योतक हो सकता है और इस दृष्टि से सामान्य ब्रह्मव्रतधारी से गौतम के ब्रह्मचर्य की साधना की दृष्टि से कुछ विशिष्टता हो सकती है और वह यही कि ब्रह्म साधना का अंतिम स्तर जो ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी के रूप में होता है, संभवतः उसी स्तर पर गौतम की साधना पहुँची होगी, और उसी बात की ओर यह विशेषण एक संकेत के रूप में हो ।

३८. दशर्वकालिक ९

३९. अभिधानराजेन्द्र भा० २ पृ० १०४५

४०. घोरं च तद् ब्रह्मचर्यं चाल्पसत्त्वैर्दुःखेन यदनुचर्यते ।

तस्मिन् घोर ब्रह्मचर्ये वस्तुं शीलमस्येति घोरब्रह्मचर्यवासी ।

—भगवती वृत्ति १।१

४१. देखिए—ज्ञातासूत्र १।१ जंबूद्वीप प्र० रायपसेणी, औपपातिक, निरयावलि या आदि ।

## विदेहभाव



गौतम के लिए एक विशेषण यह भी प्रयुक्त हुआ है—“उच्छूढ सरीरे” शरीर का त्याग करने वाले । वस्तुतः गौतम शरीरधारी थे तब शरीर का त्याग करने की बात सीधेरूप में कैसे संगत बैठ सकती है ? इसका आशय है शरीर होते हुए भी शरीर के संस्कार, ममत्व एवं किसी प्रकार की आसक्ति उनमें नहीं थी । यह विशेषण गौतम की उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति का द्योतक है । वे अध्यात्म के उस स्तर पर पहुँच गये थे जहाँ शरीर रहते हुए भी शरीर को भावना या शरीर का संस्कार नहीं रहता है । शरीर के सुख-दुःख, भूख प्यास की कोई स्थिति उन्हें अपनी साधना से विचलित नहीं कर सकती थीं । भगवान् महावीर का यह संदेश “एगमप्पाणं संपेहाए धुणे कम्म सरीराणं”<sup>४२</sup> आत्मा को शरीर से पृथक् समझकर कर्म शरीर को धुन डालो, गौतम के जीवन में रम गया था और वे सतत देह मुक्त भाव में विचरण करते हुए चिन्मय विशुद्ध स्वरूप आत्मा का चिन्तन करते रहते थे ।<sup>४३</sup> मैं केवल शक्ति-ज्योति स्वरूप हूँ ।<sup>४४</sup> ज्ञान दर्शनमय ज्योति ही मेरी आत्मा का शाश्वत रूप है । वही शुद्ध शाश्वत तत्व मैं हूँ । ये परमाणु—शरीर के सुख-दुःख, वेदना संस्कार और पोड़ा मेरा अहित नहीं कर सकते ।<sup>४५</sup> अध्यात्मयोग की यह उच्चतम भावना गौतम के जीवन में साकार हुई यह उक्त विशेषण से स्पष्ट प्रतीत होता है । उनकी दृष्टि आत्म-केन्द्रित हो गई थी, और शारीरिक संस्कार से मुक्त थी । श्रीमद् राज-चन्द्र ने इसी स्थिति को देहातीत सिद्धि बतलाते हुए ऐसे परम योगी को नमस्कार किया है—

देह छत्ता जेहनी दशा वर्ते देहातीत ।

ते योगी ना चरण मां वंदन छे अगणीत ॥<sup>४६</sup>

४२. आचारांग १ । ४ । ३

४३. केवलसत्ति सहावो सोहं—नियमसार ९६

४४. (क) एगो मे सासदोअप्पाणाणदंसणलक्खणो-नियम ०१०२-महाप्रत्याख्यान १०१

(ख) अहमिक्को खुलु सुद्धो दंसण णाण मइयो सदाऽरुवी,

णवि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि । —समयसार ३८

४५. आत्मसिद्धि—श्रीमद् राजचन्द्र,

## तपोपलब्धि



अध्यात्म की इस चरमस्थिति पर पहुँचे हुए साधक के लिए यह सहज ही था कि तपोजन्य लब्धियाँ एवं सिद्धियाँ उनके चरणों में लौटने लगे। जैन ग्रन्थों में अनेक प्रकार की तपोजन्य लब्धियों का वर्णन आता है। विशिष्ट प्रकार के तपश्चरण एवं उत्कृष्ट शुभ अध्यवसाय के कारण आत्मा में अमुक प्रकार की शक्ति जागृत हो जाती है, जिसे लब्धि कहा जाता है।<sup>४६</sup> उन लब्धियों में एक तेजोलब्धि भी है। इस लब्धि के कारण साधक किसी क्रोध आदि प्रसंग पर अपने अन्तर से एक प्रकार की अग्नि को निकालता है, जो कई योजन तक चली जाती है और उस क्षेत्र में रही हुई समस्त वस्तु, विशाल भवन, वृक्ष, नगर आदि को जला कर भस्मसात् कर डालती है। गोशालक के पास इस प्रकार की तेजोलब्धि थी, जिसका प्रयोग उसने भगवान महावीर पर भी किया था।<sup>४७</sup> गौतमस्वामी को विशिष्ट तपश्चरण के कारण जो लब्धियाँ प्राप्त हुईं उनमें तेजोलब्धि (तेजोलेख्या) भी थी, और उसकी शक्ति बहुत ही तीक्ष्ण थी। एक साथ सोलह महादेशों को भस्म करने में समर्थ ! किन्तु उनकी दृष्टि तो आत्मकेन्द्रित थी, शांति एवं वैराग्य में लीन थी, संसार के प्रत्येक प्राणी को मित्र भाव से देखते थे। अतः उन्होंने इस प्रकार की विपुल तेजोलब्धि को अपने शरीर के भीतर ही संगुप्त करके रखा था। आत्मा पर कठोर समय की वृत्ति इस विशेषण से ध्वनित होती है, और साथ ही उनकी तपोजन्य विशिष्ट उपलब्धि का दिग्दर्शन भी ! समता एवं प्रेम की दृष्टि करने वाले साधक के लिए इस प्रकार की लब्धि का प्रयोग कभी क्यों आवश्यक होता ? वह तो संसार को आग बुझाने आया था, आग लगाने नहीं, वह घर-घर में और घट-घट में महावीर का विश्वबंधुत्व, समता एवं करुणा का संदेश पहुँचाने वाला महान् साधक था, इस प्रकार की लब्धियों का संगोपन करके आत्म शक्ति का विश्व-कल्याण में नियोजन करना ही उनका ध्येय था।

४६. परिणाम तव वसेणं एमाइ हुंति लब्धीओ ।

—प्रवचन सारोद्धार, द्वार २७० गा, १४९२-१५०८

४७. भगवती सूत्र १५ ।

## गौतम की ज्ञान सम्पदा

जैन दर्शन की मूल आत्मा है—‘पढमं नाणं तओ दया’<sup>४८</sup> पहले ज्ञान फिर क्रिया। जब तक अन्तःकरण में ज्ञानज्योति प्रज्वलित नहीं होती, आत्म बोध की प्राप्ति नहीं होती, तब तक समस्त क्रिया कांड, ‘देह दंड’ से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। उस ‘देहदंड’ को जैनाचार्यों ने ‘बाल तप’ कहा है और वह कितना ही उग्र हो, उससे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती—“नहु बालतवेण मुखुति”<sup>४९</sup> इसलिए क्रिया से पूर्व ज्ञान, आत्मबोध प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। वैसे एकांत ज्ञान एवं एकांत क्रिया दोनों ही अपने में अधूरे हैं।<sup>५०</sup> किन्तु क्रम की दृष्टि से पहले ज्ञान और फिर क्रिया, यही आत्म साधना की सही दृष्टि है।<sup>५१</sup> ज्ञान को प्रकाश माना गया है,<sup>५२</sup> वह प्रकाश प्राप्त करके साधक अपने साधना मार्ग पर अस्खलित एवं अप्रतिहत गति से बढ़ता चला जाता है। जैन दर्शन का यह मूल स्वर गौतम के जीवन में मुखरित हुआ है। उन्होंने पहले ज्ञान की आराधना की, इससे आत्मस्वरूप का बोध प्राप्त किया और फिर उग्र तपश्चरण में शरीर को झौंक डाला। वे अपने पूर्व जीवन में वैदिक परंपरा के प्रकांड पंडित थे, उसके अंग-अंग को टटोला, अनुशीलन किया और उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्यों का अवबोध प्राप्त किया। आचार्य हेमचन्द्र के कथनानुसार वे चतुर्दश विधाओं में पारंगत थे।<sup>५३</sup> ‘चौदह विद्या’ में उस युग की समस्त विद्याओं का समावेश कर दिया गया था। चार वेद, छह वेदांग,<sup>५४</sup> धर्म शास्त्र, पुराण,

४८. दशवैकालिक ४

४९. आचा० नि० २।४

५०. नाणं किरिया रहियं किरियामेत्तं च दोवि एगंता।

—सन्मति तर्क० ३।६८

५१. नाणी संजम सहिओ नायवो भावओ समणो

—उत्त० नि० ३८९

५२. नाणं पयासगं। आव० नि० १०३

५३. त्रिषष्टि शलाका १०।५

५४. छह वेदांग ये हैं—

(क) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

—वैदिक कोश, पृ० ४९४ (प्रकाशक बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी)

(ख) सिक्खा-कप्पे-वागरणे-छंदे-निरुक्ते-जोइसामयणे। —भगवती, २।१

मीमांसा एवं तर्क (न्याय शास्त्र) ये चौदह विद्या कहलाती थी।<sup>५५</sup> भगवान् महावीर के पास प्रव्रजित होने पर उन्होंने गौतम को त्रिपदी का ज्ञान दिया, जिसके आधार पर उन्होंने अपनी विस्तार-बुद्धि के द्वारा विशिष्ट क्षयोपशम के कारण चतुर्दश पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। चौदह विद्याओं में जिस प्रकार वैदिक परम्परा का समस्त बाण्ड्य समाहित हो जाता है, उसी प्रकार चौदह पूर्व में जैन दर्शन का समस्त ज्ञान विज्ञान अन्तर्हित हो जाता है।<sup>५६</sup> माना तो यह भी जाता है कि इन चौदह पूर्वों में संसार की समस्त विद्याओं का समावेश हो जाता है। चतुर्दशपूर्व धर के लिए संसार का कोई भी भौतिक या आध्यात्मिक ज्ञान अविज्ञात नहीं रहता। ऐसा पूर्वों के विषयानुक्रम से स्पष्ट होता है। गौतम को 'चौद्दसपुत्रि' कहा गया है। गौतम न केवल चौदह पूर्व के ज्ञाता थे, बल्कि उनकी रचना भी उन्होंने ही की थी, चूँकि चौदह पूर्व बारहवें अंग में समाविष्ट होते हैं, और गणधर द्वादशांगी के रचयिता माने गये हैं।<sup>५७</sup> इस प्रकार संपूर्ण श्रुत शास्त्र के ज्ञाता एवं रचयिता के रूप में गौतम की विलक्षण प्रतिभा एवं गहन श्रुतविद्या का रूप हमारे समक्ष उजागर हो जाता है।

मानस ज्ञानी



गौतम केवल श्रुतज्ञान के ही नहीं, बल्कि मानसविद्या के भी विज्ञाता थे। वे किसी भी संजीप्राणी के मनोभावों का तत्काल ज्ञान प्राप्त कर सकते

५५. षडंगमिश्रिता वेदा धर्म शास्त्र पुराणकम् ।

मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्दश ।

—आप्लेज् संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी भागा, २ पृ० ६९४

कुछ अन्तर के साथ देखिए :

याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १ श्लो० ३

विष्णुपुराण अंश ३, अ० ६, श्लो० २८

५६. चौदह पूर्व के नाम क्रमशः यों हैं—

(१) उत्पाद पूर्व, (२) अग्रायणीय पूर्व (३) वीर्य प्रवाद पूर्व (४) अस्ति नास्ति प्रवाद (५) ज्ञान प्रवाद (६) सत्य प्रवाद (७) आत्म प्रवाद (८) कर्म प्रवाद (९) प्रत्याख्यान प्रवाद (१०) विद्यानुप्रवाद (११) अवन्ध्य पूर्व (१२) प्राणायु प्रवाद (१३) क्रिया विशाल पूर्व (१४) लोक विन्दुसार ।

—नंदीसूत्र ५७

५७. देखिए—आगम युग का जैन दर्शन—(पं० दलसुख भाई पृ० ८) समवायांग १४ वां एवं १४७,

थे। उनकी इस विशिष्टता को आगम में-‘चउ नाणोवगएत्ति’ विशेषण से स्पष्ट किया है। वे मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान से समस्त वाङ्मय के ज्ञाता एवं उपदेष्टा सिद्ध होते हैं, अवधिज्ञानी होने के कारण विश्व के भौतिक पदार्थों के भूत भविष्य के परिणामों का ज्ञान भी उन्हें था, और फिर मनःपयव ज्ञान के द्वारा वे संसार के समस्त संज्ञी प्राणियों के मनोभावों, मानसिक उत्थान पतन, परिवर्तन आदि का विशिष्ट ज्ञान भी प्राप्त कर लेते थे।

गौतम की ज्ञान संपदा संसार की सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट संपदा थी। वे संसार के प्रत्येक पदार्थ एवं प्रत्येक विद्या के ज्ञाता थे। और इतने बड़े ज्ञानी जब आत्म साधना के मार्ग पर बढ़े तो समस्त दैहिक भावों से मुक्त होकर अध्यात्म के चरम शिखर तक पहुँच गये थे। कठोर तपश्चरण, एकांत विशुद्ध ध्यान और उसी के साथ भगवान महावीर की अनन्यतम उपासना यह गौतम के जीवन की विशिष्टता थी।

इस प्रकार गौतम के जीवन की एक रूप छवि जो आगमों से हमें प्राप्त होती है—उस पर चिन्तन करने से लगता है—गौतम अपने युग के महानतम तत्त्वज्ञानी, विशिष्ट साधक और तपस्वी थे। एक विरल अध्यात्म योगी, सिद्धिसंपन्न साधक और विश्वकल्याण की उदग्र भावना से युक्त परिव्राजक ! जिनका बाह्य व्यक्तित्व भी गौरव-पूर्ण था और आन्तरिक व्यक्तित्व तो अन्यतम अक्षय गरिमा से मण्डित, सिद्धि से संपन्न एवं अपने युग का अद्वितीय भी कहा जा सकता है।

गौतम के जीवन में जितनी तपश्चरण की पार्वतीय उत्कटता थी उतनी ही विनय, सरलता, मृदुता की सुकुमार पुष्प सम कोमलता भी। उनका जीवन पुष्प वस्तुतः पुष्प नहीं, किन्तु फूलों का वह गुलदस्ता है, जिसमें विविध रंग, विभिन्न सौरभ एवं विविध आकार के सुरम्य सुकुमार फूल महक रहे हैं और अपने परिपार्श्व को भी सुरभित करते जा रहे हैं। आगम साहित्य में गौतम के अनेक जीवन प्रसंग फूलों की तरह बिखरे हुए हैं जिनमें कहीं भक्ति एवं विनय की सौरभ है, कहीं सरलता, सत्य-निष्ठा की महक है, तो कहीं ज्ञानोपासना एवं तत्त्व जिज्ञासा की सुगंध है, जो जीवन के विविध पक्षों को सुन्दर एवं सुरम्य रूप में प्रस्तुत करती हैं। अगले पृष्ठों पर हम गौतम के विविध जीवन प्रसंगों को एक माला का रूप देकर प्रस्तुत कर रहे हैं।

## विनम्रता की मूर्ति

अपार ज्ञानगरिमा एवं दुर्धर्ष तपः शक्ति के स्वामी होते हुए भी गौतम का हृदय बहुत ही सरल एवं विनम्र था। उन्हें कभी अपने ज्ञान का अहंकार नहीं हुआ, और न कभी अपने पद एवं साधना की प्रगल्भता में वहे। ज्ञान प्राप्ति की उत्कट जिज्ञासा का वर्णन तो अगले पृष्ठों पर पाठक देख सकेंगे। यहाँ हम गौतम के जीवन की आदर्श विनम्रता एवं सत्य शोधकवृत्ति की झांकी प्रस्तुत कर रहे हैं।

भगवान महावीर का प्रथम एवं प्रमुख श्रावक था आनन्द। जीवन के अन्तिम समय में उसने अपनी समस्त सांसारिक क्रियाओं का परित्याग करके जीवन मरण की आकांक्षा से रहित होकर उच्च आध्यात्मिक जागरण करते हुए आजीवन अनशन ग्रहण किया था। भगवान महावीर उस समय अपने श्रमण संघ के साथ वाणिज्य ग्राम के दूतिपलाश चैत्य में ठहरे हुए थे। गणधर गौतम दो दिन का उपवास पूर्ण करके पारसो के लिए नगर में गये। वहाँ भिक्षाचारो करते हुए जब वे कोल्लाग सन्निवेश के पास से गुजरे तो लोगों में एक चर्चा सुनी। स्थान स्थान पर एकत्र हुए लोग बात कर रहे थे—“भगवान महावीर का अंतेवासी (श्रावक) आनन्द पौषधशाला में जीवन की अंतिम आराधना के रूप में अनशन व्रत लेकर जन्म-मरण की आकांक्षा से मुक्त होकर आध्यात्म जागरण कर रहा है।”

लोगों की चर्चा सुनकर गौतम के मन में आनंद से मिलने की इच्छा हुई। वे कोल्लाग सन्निवेश में स्थित पौषधशाला में आये। गौतम गणधर को आता देखकर आनंद हर्ष एवं उल्लास से गदगद हो उठा। उसने हाथ जोड़कर गौतम को नमस्कार किया और प्रार्थना की—“भन्ते ! मैं इस दीर्घ तप के कारण अशक्त हो चुका हूँ, अतः उठकर आपका स्वागत सत्कार नहीं कर सकता, विधिवत् वन्दन नहीं कर सकता, अतः आप कृपा करके आगे आइए ताकि मैं सविधि वन्दन नमस्कार कर सकूँ।”

आनन्द के विनयपूर्ण वचन सुनकर गौतम निकट आये। अशक्त होते हुए भी आनन्द ने सिर झुकाकर गौतम के चरणों में विधि युक्त वंदन किया। कुछ औपचारिक वार्तालाप के पश्चात् आनंद ने पूछा—“भगवन् ! गृहस्थाश्रम में रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान प्राप्त हो सकता है ?”

गौतम ने उत्तर दिया—“हाँ, हो सकता है।”

आनन्द ने कहा—“भगवन् ! मुझे भी घर में रहते हुए अवधिज्ञान हुआ है । मैं पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में लवण समुद्र के पाँच सौ योजन तक के क्षेत्र को देखता एवं जानता हूँ । उत्तरदिशा में चुल्ल हिमवत वर्षाधर पर्वत तक देखता एवं जानता हूँ । ऊँची दिशा में सौधर्म देवलोक तक एवं नीची दिशा में रत्न प्रभा पृथ्वी के लौलुच्य नामक नरकवास तक देखता एवं जानता हूँ ।”

गौतम ने आनन्द के विशाल अवधि ज्ञान का वर्णन सुना तो आश्चर्य हुआ । वे बोले—“आनन्द ! गृहस्थ को अवधि ज्ञान तो हो सकता है, किन्तु इतनी विस्तृत सीमावाला अवधिज्ञान नहीं हो सकता । तुम्हारा कथन भ्रांति युक्त हो सकता है, अतः सत्य प्रतीत नहीं होता, तुम्हें अपनी इस भूल के लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए ।”

विनय एवं विस्मय के साथ आनन्द ने निवेदन किया—“भगवन् ! क्या जिन शासन में ऐसी भी परिपाटी है कि सत्य तथ्य एवं सद्भूत कथन के लिये भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है ?”

गौतम—“आनन्द ! नहीं !”

आनन्द—“भगवन् ! तो फिर मुझे सत्य कथन के लिये आप प्रायश्चित्त करने को कैसे कह रहे हैं ?”

आनन्द के कथन से गौतम असमंजस में पड़ गये । उन्हें अपनी बात पर शंका हुई और वे तत्काल लौटकर भगवान महावीर के पास पहुँचे । भगवान को वंदना करके गौतम ने विनयपूर्वक आनन्द के वार्तालाप की चर्चा करते हुए पूछा—“भन्ते ! क्या गृहस्थ को इतनी बड़ी सीमावाला अवधिज्ञान हो सकता है ? इस प्रसंग को लेकर मेरे और आनन्द के बीच मतभेद हो गया है । वह कहता है मुझे ऐसा अवधि-ज्ञान प्राप्त हुआ है, और मैंने कहा—इतना बड़ा अवधि ज्ञान गृहस्थ को नहीं हो सकता, तुम्हारा कथन असत्य है, प्रायश्चित्त करना चाहिए ! किन्तु भगवन् ! वह तो उलटा मुझे ही प्रायश्चित्त लेने की बात कहता है ! इसमें कौन सही है ?”

भगवान महावीर ने गौतम को संबोधित करके कहा—“गौतम ! इस विषय में आनन्द का कथन सत्य है । तुम्हें अपनी बात का आग्रह नहीं होना चाहिए,



प्रायश्चित्त तुम्हें करना होगा। तुमने सत्य वक्ता आनन्द की अवहेलना की है, अतः तुम लौटकर उसके घर जाओ, और अपनी भूल के लिए क्षमा माँगो।”<sup>५८</sup>

गौतम को अपनी भूल का पता चलते ही वे तत्क्षण आनन्दगाथापति के पास पहुँचे, अपने कथन पर पश्चात्ताप करते हुए क्षमा माँगी और आनन्द की बात को भगवान के द्वारा सत्य प्रमाणित करने की स्वीकृति दी।<sup>५९</sup>

इस घटना में गौतम के व्यक्तित्व का एक महान रूप उजागर हुआ है—विनम्रता ! बौद्धिक अनाग्रह एवं निरहंकार वृत्ति ! मनुष्य का स्वभाव है, वह सामान्यतः अपनी भूल को भूल रूप में नहीं जान पाता, जान लेने पर भी उसे स्वीकार नहीं करता, यदि मन-ही-मन स्वीकार भी कर ले तो भी किसी के समक्ष जाकर क्षमा माँगना तो उसे मृत्यु से भी अधिक भयानक एवं यंत्रणादायी लगता है। जिसमें यदि वह किसी ऊँचे पद पर है, और अपने से छोटों के समक्ष भूल स्वीकार करने का प्रसंग आता है तो वह उसके लिए असह्य वेदना का रूप ले लेती है। गणधर गौतम को जब आनन्द श्रावक के समक्ष अपनी भूल स्वीकार करने का प्रसंग आया तो उन्होंने बिना किसी प्रकार का ननुनच किए तत्क्षण प्रसन्नतापूर्वक उस ओर चल पड़े। यह उनके मन की कितनी महानता है। इस असीम विनम्रता में ही वस्तुतः उनकी महानता का सूत्र छिपा है। और यह विनम्रता गौतम के आन्तरिक जीवन की सच्ची निर्ग्रन्थता की सूचना देती है। तथागत बुद्ध ने कहा है<sup>६०</sup> “निर्ग्रन्थ वह है जिसके मन में गाँठ नहीं होती है और गाँठ उसे नहीं होती जिसका मान-अहंकार क्षीण हो गया है।” इसी घटना से गौतम की सत्य-संधित्सु वृत्ति की एक विराट भलक मिल जाती है, जब उन्हें आनन्द के कथन में सत्य प्रतीत हुआ तो वे उसकी स्पष्ट स्वीकृति देने को चल पड़े, अपने दो दिन के उपवास के पारण्ये की परवाह किये बिना। सत्य की स्वीकृति और सत्य का सम्मान करना गौतम का सहज स्वभाव था ऐसा प्रतीत होता है। भगवान महावीर का यह संदेश—सच्चमेव समभिजाणाहि<sup>६१</sup>—उनके अन्तरमन का स्पन्दन बन गया था जो प्रतिश्वास में धड़क रहा था।

५८. आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि—उवासगदशा १।८६

५९. उवासगदशा १ सूत्र ७० से ८५

६०. पहीनमानस्स न सन्तिगन्था—संयुत्तनिकाय १।१।२५

६१. आचारांय १।३-१११

## सरलता का अक्षय स्रोत

गणधर गौतम को जीवन में चरम कोटि का सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। भगवान महावीर के तो वे प्रिय शिष्य थे ही, उनकी अनन्य कृपा उन पर थी, और साथ ही संपूर्ण श्रमण संघ की श्रद्धा, सम्राटों और सेनापतियों का आदर सम्मान भी गौतम को प्राप्त हुआ था। इतनी श्रद्धा सम्मान पाकर भी गौतम कभी अपने को भूले नहीं थे। उनके मन में कभी अहंकार तो जगा ही नहीं। उनका व्यवहार इतना मृदु और आत्मीय होता था कि सामान्य से सामान्य जन, अवोध बालक भी उनकी ओर यों आकृष्ट हो जाता जैसे शिशु माता की ओर। उनके जीवन की सरलता एवं मृदुता का निदर्शन कराने वाली एक घटना अंतकृत दशा में उल्लिखित है।<sup>६२</sup>

एक बार भगवान महावीर पोलासपुर नगर में पधारे। वहाँ पर विजय नामक राजा था। जिसकी श्रीदेवी नाम की महारानी थी। श्रीदेवी का एक अत्यंत प्रिय सुकुमार पुत्र था अतिमुक्तक कुमार।

गणधर गौतम पोलासपुर नगर में भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए उधर पहुँच गए जहाँ पर राजकुमार अतिमुक्तक अपने बाल साथियों के साथ खेल रहा था। बच्चों के खेलने के लिए एक मैदान था जिसे 'इन्द्रस्थान' कहा जाता था। गौतम जब उस इन्द्रस्थान के निकट से गुजरे तो कुमार अतिमुक्तक ने उन्हें देखा। गौतमस्वामी की विशिष्ट श्वेत वेषभूषा, और दिव्य रूप एवं मंद-मंद गति देखकर कुमार के मन में उनके प्रति कौतुहल जगा। वह कुछ देर उनकी ओर देखता रहा, फिर निकट आया तो उनकी अद्भुत सौम्यता से निर्भय होकर पूछने लगा—“भदन्त ! आप कौन हैं और किस कारण यों घर-घर में घूम रहे हैं ?”

गौतम ने मंदस्मित के साथ बालक की ओर देखा, सहज निश्चलता एवं गुलाबी सुकुमारता उसके मुख पर बिखर रही थी। मधुर स्वर से गौतम ने कहा—“देवानुप्रिय ! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं, भिक्षा प्राप्त करने के लिए इस प्रकार उच्च-नीच-मध्यम कुलों में भ्रमण कर रहे हैं।”

अतिमुक्तक—“भन्ते ! आप मेरे घर से भी भिक्षा लेंगे ?”

गौतम—“हाँ, क्यों नहीं।”

अतिमुक्तक—“तो फिर चलिए, आप मुझे बड़े ही प्रिय लग रहे हैं, मैं अपने घर ले जाकर आपको भिक्षा दूँगा।” यों कहकर अतिमुक्तक ने गौतम की अंगुली पकड़ ली।<sup>६३</sup> जैसे कोई मित्र अपने मित्र की अंगुली पकड़ कर उसे अपने घर ले चलने का आग्रह करता हो, और गौतम भी बालक अतिमुक्तक के साथ-साथ राज-महलों की ओर चल दिये। जब श्रीदेवी ने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़े राजकुमार को महलों की ओर आते देखा तो वह हर्ष से गद्गद हो उठी। इतने बड़े महान तपस्वी महाश्रमण ! छोटे से बच्चे के साथ अंगुली पकड़े कितने प्रेम एवं सरल भाव के साथ भिक्षा के लिये आ रहे हैं ? रानी का अंग-अंग प्रसन्नता से नाच उठा। उसने सामने आकर गौतम को वंदना की और अत्यन्त भाव प्रवणता से भिक्षा प्रदान की।

भिक्षा लेकर जब गौतम स्वामी चलने लगे तो कुमार अतिमुक्तक ने पूछा—  
“भन्ते ! अब आप कहाँ जायेंगे ? आपका निवास कहाँ है ?”

श्रीदेवी बालक के भोले-भाले प्रश्नों पर सकुचा रही थी कि यह अबोध बालक गौतम स्वामी से क्या ऊलजलूल पूछ बैठेगा ? पर गौतम बड़े ही स्नेह एवं सरलता के साथ बालक को उत्तर देते हुए बोले—“कुमार ! हमारे धर्मगुरु भगवान महावीर स्वामी तुम्हारे नगर के बाहर श्रीवन उद्यान में पधारे हैं, हम लोग वहीं ठहरे हैं।”

गौतम के स्नेहमय व्यवहार से कुमार का मन आकृष्ट हो गया। वह बोला—  
“भन्ते ! मैं भी आपके साथ आपके धर्माचार्य के दर्शन करने को चलूँ ?”

गौतम ने स्वीकृति दी, कुमार गौतम के साथ-साथ भगवान महावीर के निकट पहुँचा। भगवान ने राजकुमार को धर्म कथा सुनाई और कुमार को वैराग्य जागृत हुआ। उसने माता पिता की आज्ञा लेकर भगवान का शिष्यत्व स्वीकार किया।

बालक के साथ बालक का-सा व्यवहार करके उसके हृदय को जीतना सरल नहीं है। विद्वान विद्वान के साथ चर्चा करके उसे प्रभावित कर सकता है, पर अबोध बच्चों के हृदय को समझकर उसे धर्म एवं अध्यात्म जैसे नीरस विषय की ओर आकृष्ट

६३. अहं तुभं भिक्खं दवावेमिति भगवं गोयमं अंगलीए गेण्ह ।

—अंतकृत् दशा ६

करना बहुत ही कठिन है। इसमें विद्वत्ता की नहीं, किन्तु हृदय की सरलता, स्नेह-सिक्तता एवं मधुरता की आवश्यकता होती है। बालक द्वारा अंगुली पकड़ने पर भी गौतम स्वामी ने उसे फिड़का नहीं, उससे छुड़ाने का प्रयत्न भी नहीं किया। चूँकि ऐसा करने पर संभव था बालक के कोमल हृदय को ठेस पहुँचे, साधुवेष के प्रति उसके मन में जो आकर्षण जगा, वह नफरत व भय में बदल जाये। गौतम की इस प्रकार की सरलता, मधुरता एवं स्नेहशीलता के कारण ही न जाने कितने खिलते हुए सुकुमार शैशव और उभरते हुए अल्हड़ यौवन त्याग, साधना एवं अध्यात्म विद्या के मार्ग पर आकर समर्पित हो गये। लगता है गौतम वास्तव में ही सरलता एवं मधुरता का अक्षय स्रोत था।

### मधुर आतिथ्य

गौतम के हृदय की मधुरता का एक ओर उदाहरण भगवती<sup>६४</sup> में आता है। कृतंगला नगरी से कुछ दूर श्रावस्ती में परिव्राजक<sup>६५</sup> साधुओं का एक विशाल

६४. भगवतीसूत्र २।१

६५. (क) परिव्राजक—भिक्षा से आजीविका करने वाला साधु—निरुक्त १।१४

—(वैदिक कोश)

(ख) जैन सूत्र एवं उत्तरवर्ती साहित्य में तापस, परिव्राजक, सन्यासी आदि अनेक प्रकार के साधकों का विस्तृत वर्णन आता है। इसके लिए औपपातिकसूत्र सूत्रकृतांग नियुक्ति, पिंडनियुक्तिगा. ३१४ वृहत्कल्प भाष्य भा.४ पृ० ११७० निशोथ सूत्र सभाष्य चूर्णि भाग-२ एवं भगवती सूत्र ११।१. आवश्यक चूर्णी पृ० २७८। धम्मपद अट्ठकथा २ पृ० २०९ दीघ निकाय अट्ठकथा—१ पृ० २७०। ललित विस्तर पृ० २४८। तथा जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४१२ से ४१६ तक में देखा जा सकता है।

### परिव्राजक श्रमणों का संक्षिप्त परिचय

“गेरुआ वस्त्र धारण करने के कारण इन्हें गेरुअ अथवा गैरिक भी कहा गया है।<sup>१</sup> परिव्राजक-श्रमण ब्राह्मण धर्म के प्रतिष्ठित पण्डित होते थे। वशिष्ट धर्म

१. निशोथचूर्णी १३.४४२०।

परिवार रहता था। उनमें गर्दभालि नामक परिव्राजक का शिष्य स्कन्दक परिव्राजक मुख्य था—स्कन्दक कात्यायन गोत्र का था, चार वेद एवं अन्य अनेक धर्मशास्त्रों का वह पारंगत था। ब्राह्मण एवं परिव्राजकों के दर्शन का उसने गहन अध्ययन एवं अनुशीलन किया था।

सूत्र में उल्लेख है कि परिव्राजक को अपना सिर मुण्डित रखना चाहिए। एक वस्त्र अथवा चर्मखण्ड धारण करना चाहिए, गायों द्वारा उखाड़ी हुई घास से अपने शरीर को आच्छादित करना चाहिये। तथा जमीन पर सोना चाहिए।<sup>१</sup> ये लोग आवसथ (अवसह) में निवास करते तथा आचारशास्त्र और दर्शन आदि विषयों पर वादविवाद करने के लिए दूर-दूर तक पर्यटन करते।

परिव्राजक श्रमण चार वेद इतिहास (पुराण), निघंटु पण्डितन्त्र, गणित, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष शास्त्र तथा अन्य ब्राह्मण शास्त्रों के विद्वान् होते थे। दान धर्म, शौच धर्म और तीर्थ स्नान का वे उपदेश करते थे। उनके मतानुसार जो कुछ भी अपवित्र होता वह जल और मिट्टी के धोने से पवित्र हो जाता है। और इस प्रकार शुद्ध देह (चोक्ष) और निरवध्य व्यवहार से युक्त होकर स्नान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इन परिव्राजकों को तालाब, नदी, पुष्करिणी, वापी, आदि में स्नान करने; गाड़ी, पालकी अश्व, हाथी आदि पर सवार होने, नट मागध आदि का तमाशा देखने, हरित वस्तु आदि को रोंदने, स्त्री, भक्त, देश, राज और चोर कथा में संलग्न होने, तुम्बी, काष्ठ और मिट्टी के पात्रों के सिवाय बहुमूल्य पात्र धारण करने, गेरुए वस्त्र को छोड़कर विविध प्रकार के रंगीन वस्त्र पहनने, तांबे की अंगुठी (पवित्रिय) को छोड़कर हार, अर्धहार, कुण्डल आदि आभूषणों को धारण करने, कर्णपुर को छोड़कर अन्य मालाएँ पहनने और गंगा की मिट्टी को छोड़कर अगुरु, चन्दन आदि का शरीर पर लेप करने की मनायी है। उन्हें केवल पीने के लिए एक मागध प्रस्थप्रमाण जल ग्रहण करने का विधान है। वह भी बहता हुआ और छत्रों से छना हुआ (परिपूय)। इस जल को वे हाथ, पैर, थाली या चम्मच आदि धोने के उपयोग में नहीं ला सकते।<sup>१,२</sup>

—जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ११२-११६

२. १०-६-११; मलालसेकर, डिक्सनरी ऑफ पाली प्रोपर नेम्स, जिल्द २, पृ० १५९ आदि; महाभारत १२.१९०.३।
३. औपपातिकसूत्र ३८, पृ० १७२-७६

श्रावस्ती में निर्ग्रन्थ प्रवचन के रहस्यों का जानकार एक पिंगल नामक निर्ग्रन्थ रहता था। भगवान महावीर की वाणी उसने सुनी थी और वह उस पर अत्यन्त श्रद्धा रखता था। एक बार पिंगल निर्ग्रन्थ स्कन्दक परिव्राजक के पास आया और उसे आक्षेपात्मक भाषा में पूछा—“मागध ! क्या तुम बता सकते हो, यह लोक सान्त है या अनन्त ? जीव सान्त है या अनन्त ? सिद्धि एवं सिद्ध सान्त है या अनन्त ? किस प्रकार की मृत्यु प्राप्त होने से पुनर्जन्म का अवरोध हो सकता है ? क्या तुम मेरे इन प्रश्नों का समाधान कर सकोगे ?”<sup>६६</sup>

पिंगल के द्वारा इस प्रकार के गम्भीर प्रश्न सुनकर स्कन्दक विचार मग्न हो गया। उसे इन प्रश्नों का उत्तर नहीं सूझा। पिंगल के द्वारा दो-तीन बार पूछने पर भी वह मौन रहा, और मन-ही-मन अपने शास्त्रों पर शंका होने लगी, जहाँ इस प्रकार के प्रश्नों पर कहीं कोई चिन्तन नहीं किया गया। उसको स्व-आगम श्रद्धा विचलित हो गई, और वह इनका समाधान पाने को आतुर हो उठा। उसी समय स्कन्दक ने लोगों में एक चर्चा सुनी कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर आज कृतंगला नगरी के छत्र पलाश उद्यान में पधारे हैं। उन महाभाग के दर्शन अभिवादन से तो परम लाभ प्राप्त होता ही है, किन्तु उनके दर्शन तो दूर रहे, तो उनका नाम गोत्र सुनने से भी मनुष्य का कल्याण हो जाता है। उनके उपदेश से सब प्रकार के संशय विनष्ट हो जाते हैं और आत्मा परम समाधि को प्राप्त होता है।”

जनता के मुख से इस प्रकार का संवाद सुनते ही स्कन्दक के विचारों में एक हलचल हुई, उसे एक मार्ग दीखपड़ा, अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करने की बलवती जिज्ञासा उसमें जगी। वह अपने स्थान पर आया, त्रिदण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्ष माला, आसन आदि लेकर वह भी भगवान महावीर के समवसरण की ओर चल पड़ा।

६६. मागहा ! किं स अंते लोए, अणंते लोए ?

सअंते जीवे, अणंते जीवे ?

स अंता सिद्धि अणंता सिद्धि ?

स अंते सिद्धे, अणंते सिद्धे ?

केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति वा ?

—भगवती सूत्र २।१

भगवान महावीर ने गौतम को संबोधित करके पूछा—“गौतम ! क्या तुम अपने चिर परिचित पूर्व जन्म के मित्र को देखना चाहते हो” ?

गौतम ने आश्चर्य पूर्वक भगवान की ओर देखा, उनकी भावना में आश्चर्य था, जिज्ञासा थी ! भगवान ने कहा—“गौतम तुम आज अपने पूर्व परिचित मित्र को देखोगे ?”<sup>६७</sup>

गौतम अभी भी भगवान की रहस्य भरी वाणी को नहीं समझ सके ! उन्होंने पूछा—“भगवन् ! वह मित्र कौन है, जिसे मैं आज देखूँगा ?”

भगवान ने स्कंदक का परिचय देते हुए बताया—“वह स्कन्दक परिव्राजक तुम्हारे पूर्व जन्म का मित्र है, उसके मन में शंका हो जाने से वह समाधान पाने के लिए अभी आ रहा है। कुछ समय बाद वह तुम्हारे निकट आयेगा और तुम उसे देखोगे।”

गौतम के हृदय में मित्र दर्शन की उत्कण्ठा जगी और साथ ही उसके कल्याण की कामना भी। वस्तुतः सच्चा मित्र वही होता है जो कल्याण-सखा होता है। गौतम ने भगवान से पूछा—“भन्ते ! मेरे पूर्व जन्म का मित्र स्कंदक क्या आपके पास धर्म श्रवण कर दीक्षित हो सकेगा ?”

भगवान ने इस प्रश्न का उत्तर ‘हाँ’ में दिया। तभी स्कन्दक आते हुए दिखलाई पड़े। गौतम श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि थे, और स्कन्दक एक परिव्राजक परम्परा का विद्वान ! फिर भी गौतम के मन में स्कन्दक के प्रति आदर जगा, सामान्य शिष्टाचार और स्वागत सत्कार की विधि के अनुसार वे भगवान के पास से उठे दस-बीस कदम आगे बढ़े और स्नेह एवं माधुर्य से छलछलाई आँखों से हर्ष व्यक्त करते हुए सभ्य, शिष्ट एवं मधुर वाणी से बोले—“स्कन्दक ! आप आगए ? स्वागत है आपका, स्वागत है। बहुत बहुत स्वागत है। आपका विचार, आपकी धर्म जिज्ञासा प्रशंसनीय है।<sup>६८</sup> पिंगल निग्रन्थ के प्रश्नों द्वारा आपके मन में जो जिज्ञासा जगी है अब उसका समाधान प्रभु से प्राप्त कीजिए !”

६७. दच्छसिणं गोयमा ! पुव्व संगयं ।

कं णं भन्ते ?

खंदयं नाम !

—भगवती २।१.

६८. हे खंदया ! सागयं, खंदया ! सुसागयं,

अणुरागयं खंदया ! सागय मणुरागयं खंदया !

—भगवती २।१.

गौतम के इस प्रकार के निश्छल स्नेह एवं सन्मान भरे वचनों को सुनकर परिव्राजक स्कन्दक पुलकित हो उठा। साथ ही उसके हृदय की गुप्त जिज्ञासा की चर्चा सुनकर उसे सुखद आश्चर्य भी हुआ। भगवान की सर्वज्ञता की बात जो उसने सुनी थी उस पर सहज ही विश्वास होने लगा। और वह इस प्रकार प्रसन्नभाव से गौतम के साथ भगवान के चरणों में आकर वन्दन नमस्कार करके उपस्थित हुआ। स्कन्दक ने प्रभु से अपनी शंकाओं का समाधान पाया, सम्यग् दृष्टिप्राप्त हुई और वह सर्वात्मना प्रभु के चरणों में समर्पित हो गया।

भगवती सूत्र के वर्णनों से ज्ञात होता है कि स्कन्दक ने भगवान से जिन प्रश्नों का समाधान पाया तथा प्रकार के प्रश्न उस युग के दार्शनिक मस्तिष्क में चारों ओर चक्कर काट रहे थे। अनेक परिव्राजक, सन्यासी तथा श्रमण उन प्रश्नों पर चिन्तन करते रहते, और यथार्थ समाधान न मिलने के कारण इधर उधर विद्वानों एवं धर्मप्रवर्तकों के द्वार पर उनका समाधान खोजने घूमते रहते थे। बुद्ध के निकट भी इसी प्रकार के प्रश्न लेकर कई जिज्ञासु आते थे किन्तु बुद्ध उन प्रश्नों को अव्याकृत<sup>६९</sup> करार देकर उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते। जबकि महावीर इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान करके जिज्ञासुओं को आत्मसाधना की ओर मोड़ने का उपक्रम रचते थे।

स्कन्दक की घटना से ज्ञात होता है कि वह अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर परम सन्तुष्ट हुआ, भगवान का शिष्य बना। बारह अंगों का अध्ययन करके जैन दृष्टि का परम रहस्य वेत्ता बना और फिर सम्यग्ज्ञान पूर्वक अनेक प्रकार की तपः साधना करके समाधि मरण प्राप्त किया।<sup>७०</sup>

---

६९. बुद्ध ने जिन प्रश्नों को अव्याकृत कहा हैं, वे यों हैं—

१. क्या लोक शाश्वत है ?
२. क्या लोक अशाश्वत है ?
३. क्या लोक अन्तर्मान है ?
४. क्या लोक अनन्त है ?
५. क्या जीव और शरीर एक है ?

(अगले पृष्ठ पर देखिए)



स्कन्दक जैसे परिव्राजक परम्परा के सूत्रधार को भगवान महावीर की ओर प्रेरित करने में पिंगल निष्प्रन्थ भले ही निमित्त रहा हो, पर भगवान के प्रति उसकी श्रद्धा भक्ति को जगाने एवं संयम साधना के प्रति आकृष्ट करने में गौतम का मधुर व्यवहार एवं हार्दिक स्नेह प्रमुख कारण रहा—यह निःसन्देह कहा जा सकता है। भगवान के द्वार पर गौतम द्वारा स्कन्दक का स्वागत और सम्मान जैन शिष्टाचार की एक महत्वपूर्ण घटना है। अन्य परम्परा के भिक्षुओं के साथ इस प्रकार के मधुर एवं शिष्टाचार पूर्ण व्यवहार के उदाहरण आज नई सभ्यता के युग में भी हमें उच्च व्यावहारिक दृष्टि प्रदान करते हैं।

### निर्भीक शिक्षक

गौतम जितने व्यवहार कुशल थे, उतने ही स्पष्ट वक्ता और निर्भीक शिक्षक भी थे। प्रायः व्यवहार कुशलता को चाटुकारिता का रूप दे दिया जाता है, उसे एक प्रकार की खुशामद या 'गंगा गये गंगादास जमुना गये जमुनादास' की नीति मानी जाती है, किन्तु यह हमारे मन की भ्रान्ति तथा आत्मविश्वास की दुर्बलता है। व्यवहार कुशलता के साथ स्पष्टवादिता एवं निर्भीक शिक्षक होने से कोई विरोध नहीं है, अपितु ये गुण तो व्यवहार कुशलता को और चमका देने वाले हैं—यह बात गौतम और उदकपेढाल (पार्श्वनाथ के शिष्य) के बीच हुए वार्तालाप के अनन्तर उनके व्यवहार पर की गई गौतम की टीका से स्पष्ट हो जाता है।<sup>७१</sup>

उदक पेढाल ने अनेक प्रश्न किये थे और गौतम ने उनका उचित समाधान भी दिया। पर उसके व्यवहार से गौतम को प्रतीत हुआ कि उसमें कुछ अपने ज्ञान का अहंकार आ गया है, और वह इतर श्रमण ब्राह्मणों पर कुछ-कुछ कटु आक्षेप एवं

६. क्या जीव और शरीर भिन्न हैं ?

७. क्या मरने के बाद तथागत नहीं होते ?

८. क्या मरने के बाद तथागत होते भी हैं, और नहीं भी होते ?

९. क्या मरने के बाद तथागत न होते हैं और न नहीं होते हैं ?

—मज्झिम निकाय, चूलमालुङ्कय सुत्त ६३

—दीघनिकाय, पोढु पाद सुत्त, ११९,

७०. भगवती सूत्र २।१

७१. संवाद का पूरा विवरण देखिए परिसंवाद खण्ड में

शाब्दिक प्रहार करने में भी नहीं चूकता है तो गौतम ने उसे प्रेम पूर्वक शिक्षा के रूप में कहा—‘आयुष्मन् ! जो साधक पाप कर्मों से मुक्त होने के लिये सम्यक् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य की आराधना कर रहा हो, वह यदि दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों की अवहेलना एवं निन्दा करता है, (भले ही वह अपने मन में उन्हें अपना मित्र समझता हो) तो उसे परलोक में कल्याण प्राप्त नहीं होता।’<sup>३२</sup>

संभवतः गौतम की शिक्षा उदक पेढाल पुत्र के मन में चुभ गई हो, उसे अपनी वृत्ति पर कुछ भिन्नता आई हो और इसलिए वह इतनी तत्त्वचर्चा कर चुकने के बाद भी बिना किसी प्रकार के अभिवादन एवं कृतज्ञता ज्ञापन के चल पड़ा तो गौतम को उसका अविनयपूर्ण व्यवहार अखरा। एक श्रमण, जिसके कि धर्म का मूल ही विनय है<sup>३३</sup> विनय, सम्यता, शिष्टाचार की शिक्षाओं से जिसके धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं<sup>३४</sup> वह यों शंका समाधान कर्ता के प्रति अविनयपूर्ण व्यवहार करे यह नितान्त अनुचित था और गौतम जैसे महान साधक, उपदेशक एवं विनयमूर्ति इस बात को यों ही गवारा नहीं कर सकते थे। गौतम ने उदक पेढालपुत्र को उठते-उठते पुकारा—‘आयुष्मन् ! किसी श्रमण निर्ग्रन्थ के पास यदि धर्म का एक भी श्रेष्ठ पद, एक भी सुवचन—‘एगमपि सुवयणं’ सुनने को मिला हो, तथा किसी ने अनुग्रह करके योगक्षेम का उत्तम मार्ग दिखाया हो, तो क्या उसके प्रति कुछ भी सत्कार, सम्मान व आभार प्रदर्शित किये बिना चले जाना चाहिए ?’<sup>३५</sup>

गौतम के कहने का ढंग इतना स्नेहपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी था कि उदक पेढाल पुत्र के पैर वहीं रुक गये, वह आश्चर्यपूर्वक गौतम स्वामी की ओर देखने लगा, उसकी आँखों में कृतज्ञता के भाव आने लगे, और वह संभ्रमित-सा हो गया कि मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए ?

७२. आउसंतो उदगा ! जे खलु समणं वा माहणं वा परिभासेइ मितिमन्त्रंति.....  
से खलु परलोग पलिमंथताए चिट्ठइ । —सूत्र कृतांग २।७।३६

७३. ....एवं धम्मस्स विणओ मूलं—दशवै० १।२।२

७४. (क) जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे तस्संतिए वेणइयं पउंजे—दशवै० १।१।१२

(ख) देखिए उत्तराध्ययन विनय अध्ययन गाथा १८-२३

७५. उदगा ! जे खलु तहा भूतस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमपि आरियं सुवयणं सोच्चा निसम्म.....आढाई परिजाणंति वंदंति नमंसंति.....

सूत्र कृतांग २।७।३७

गौतम ने आगे कहा—“आयुष्मन् ! मेरे विचार से ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति को पूज्य बुद्धि से नमस्कार करना चाहिए, उसका सत्कार एवं सम्मान करना चाहिए । उन्हें कल्याणकारी मंगलमय देवतास्वरूप मानकर उनकी पयुर्पासना करनी चाहिए ।”

गौतम के ‘हियं मियं विगयभयं’ हित-मित एवं निर्भीक वचनों को सुनकर उदक पेढाल का हृदय गदगद हो गया । उसने क्षमा मांगते हुए विनयपूर्वक अपनी भूल स्वीकार की और कहा—“भगवन् ! मुझे पहले कभी इस प्रकार की शिक्षा सुनने का अवसर ही नहीं मिला, अतः मैं विनय के आचार से भी अनभिज्ञ रहा । आपके शब्दों से अब मुझे अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ है, साथ ही आपके हितकारी वचनों पर विश्वास भी हुआ है, श्रद्धा एवं प्रतीति हुई है, अब मैं अपने कर्त्तव्य एवं धर्म को पहचान पाया हूँ और मैं चाहता हूँ कि आपका शिष्यत्व स्वीकार करूँ ।”<sup>७६</sup>

उदकपेढालपुत्र की भावना को समझकर गौतम ने उसे चतुर्याम धर्म के स्थान पर पंचयाम धर्म की शिक्षा दी और भगवान महावीर के श्रमणसंघ में सम्मिलित किया ।

उदक पेढाल पुत्र पार्श्वनाथ की प्राचीन परम्परा से संबंधित था । गौतम ने उसके प्रश्नों का संतोषजनक समाधान देकर ही इति नहीं समझा । किन्तु जब उसे व्यवहार के क्षेत्र में अनभिज्ञ एवं असंस्कृत देखा तो कर्त्तव्य का उचित बोध देने में भी नहीं चूके । भले ही उनकी ‘हित शिक्षा’ एक बार उसे कड़वी लगी हो, किन्तु वह मिसरी सी मधुर होने के साथ वजनदार भी थी, माधुर्य के साथ चोट करने की क्षमता उसमें थी, उसी मधुर चोट ने उदक पेढाल पुत्र को अपने कर्त्तव्य, विनय-व्यवहार एवं आत्मधर्म के प्रति जागृत कर दिया और फलतः वह सही मार्ग पर आ सका । इस घटना में गौतम के अन्तर का सच्चा गुस्त्व उजागर हुआ है जो शिष्य के कल्याण के लिए सदा निर्भय होकर हित बुद्धि से मार्गदर्शन करता रहता है ।

७६. एतेसिणं भंते ! पदाणं पुब्बिं अन्नाणयाए असवणयाए अबोहिए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं असुयाणं....एयमट्ठं सदहामि पत्तियामि रोएमि एवमेव से जंहेय तुब्भे वदह—सूत्र कृतांग २।७।३८

## कुशल उपदेष्टा

गौतम के व्यक्तित्व में जिस प्रकार निर्भीक शिक्षक का रूप निखरा है, उसी प्रकार उनमें कुशल उपदेशक के गुण भी प्रकट हुए हैं। संस्कृत की एक सूक्ति है—**वक्ता दश सहस्रेषु**<sup>७७</sup> हजार में कोई एक पंडित होता है, और दश हजार में कोई एक वक्ता। हर विद्वान् शास्त्रज्ञ वक्ता नहीं हो सकता। आचार्य सिद्धसेन ने कहा है—“हर कोई सिद्धान्त का ज्ञाता भी निश्चित रूप से प्ररूपणा करने योग्य प्रवक्ता नहीं हो सकता।”<sup>७८</sup> भगवान् महावीर ने बताया है—“धर्म का उपदेश करने वाला निर्भय एवं सम-दृष्टि होना चाहिए, साथ ही उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि जिसे उपदेश दिया जा रहा है उसकी पात्रता क्या है? उसके विचार, उसकी श्रद्धा एवं योग्यता कैसी है? इन विषयों की सम्यक् आलोचना करके ही प्रवक्ता धर्म का उपदेश करे।”<sup>७९</sup> गणधर गौतम की उपदेश शैली में इन गुणों का सामंजस्य हुआ है, यह कहा जा सकता है? भले ही आज गौतम द्वारा उपदिष्ट वचन, ग्रंथ निबद्ध हमारे समक्ष न रहे हों, किन्तु जिस प्रकार की घटनाएँ उल्लिखित हैं, उसमें गौतम के उपदेश की फलश्रुति प्रायः सार्थक रूप में लक्षित हुई हैं। गौतम ने जिन-जिन को उपदेश दिया, वे चाहे सामान्य ग्रामीण व अबोध किसान रहे हों, या कुशल गाथापति, परिव्राजक एवं सम्राट रहे हों, वे प्रायः उपदेश से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने हैं, श्रमण धर्म स्वीकार करके साधना पथ पर अग्रसर हुए हैं ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं।<sup>८०</sup>

७७. श्तेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः ।

वक्ता दश सहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥

७८. णवि जाणओ वि णियमा पणवणा णिच्छिओ णामं ।

—सन्मति तर्क ३।६३

७९. जहा पुणस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ

जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुणस्स कत्थइ

अवि य हणे अणाइयमाणे, इत्थं पि जाण सेयंति नत्थि ? केयं पुरिसे कं च नए ?

—आचारांग १।२।६

८०. देखिए—(क) उत्तराध्ययन (टीका) अ० १०

(ख) उपदेशपद सटीक गा० ७

(ग) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित १०।९

एक बार भगवान महावीर जनपद विहार करते हुए किसी वन से गुजर रहे थे। मार्ग में किसी खेत पर एक किसान को हल चलाते हुए देखा। चिल-चिलाती धूप में वह किसान दुर्बल बँलों को बड़ी नृशंसता से पीट-पीट कर आगे धकेल रहा था। बँलों की पीठ पर रस्सियों के दाग जम गये थे, बिचारे भूखे प्यासे बँल धूप में हल के जुए को गिरा कर बैठने की चेष्टा कर रहे थे और किसान उन्हें बैत से पीट कर हाँकने का यत्न कर रहा था। कर्णावतार भगवान महावीर ने जब यह हृदय द्रावक दृश्य देखा तो गौतम से कहा—“गौतम ! जाओ इस किसान को उपदेश से प्रतिबुद्ध करो।”

गौतम प्रभु की आज्ञा लेकर किसान के निकट पहुँचे। बँल हाँक रहे थे, फिर भी किसान उन पर बैत की वर्षा करता हुआ आगे धकेल रहा था। गौतम ने किसान को सरल एवं सीधी भाषा में उपदेश दिया। भले ही किसान के समक्ष गरीबी की समस्या रही हो, पेट भरने की पुकार ने उसे इस क्रूरता का पाठ सिखाया हो, पर उसका एकमेव समाधान ‘अर्थ’ ही तो नहीं था। हृदय परिवर्तन से भी उसका कोई समाधान निकल सकता था और वही समाधान गौतम ने दिया। कृषक पर उपदेश का ऐसा जादू हुआ कि वह खेती और बँलों को छोड़कर गौतम का शिष्य बन गया। गौतम ने उसे अपने धर्माचार्य के पास चलने को कहा—किसान ने कहा—मेरे गुरु तो आप ही हैं। तब गौतम ने उसके समक्ष भगवान के दिव्य अतिशयों का वर्णन कर उस नव प्रव्रजित शिष्य को भगवान के निकट लेकर आये। नव प्रव्रजित किसान जैसे जैसे भगवान के समीप आया उसके हृदय में भय एवं आवेश की भावना जगने लगी। भगवान महावीर को देखते ही उसका रोम-रोम कांप उठा जैसे बर्फ़ीले तूफान से पौधे कांप उठते हैं।

उसने कहा—मैं इनके पास नहीं जाऊँगा।

गौतम—ये ही तो अपने धर्माचार्य हैं।

किसान—‘ये ही तुम्हारे गुरु हैं तो तुम्हीं रखो, मुझे नहीं चाहिए’ यह कह कर वह भयभ्रांत होकर पीछे से खिसक गया। गौतम स्वामी ने जब नव-शिष्य को भगवान के समक्ष उपस्थित करने की भावना से पीछे देखा, तो वह तो जंगल की ओर उल्टे पाँवों दौड़ रहा था जैसे कोई हरिण बंधन से छूटकर दौड़ रहा हो। आश्चर्य चकित गौतम ने भगवान से पूछा—“भन्ते ! यह क्या अभूतपूर्व देख रहा हूँ। भयत्रस्त एवं अशरण व्यक्ति आपके चरणों में आकर त्राण एवं शरण पाते हैं, किन्तु यह मेरा नव प्रव्रजित शिष्य तो आपको देखकर भयभीत हुआ भाग रहा है।”

भगवान ने समाधान किया—“गौतम ! यह पूर्व बद्ध प्रीति एवं वर का खेल है । इस किसान के जीव की तुम्हारे साथ पूर्वप्रीति है, अनुराग है, इसलिए तुम्हें देखकर इसके मन में अनुराग पैदा हुआ और तुम्हारे उपदेश को सुनकर इसे सुलभ बोधित्व की प्राप्ति हुई । मेरे प्रति अभी इसके संस्कारों में वर एवं भय की स्मृतियाँ शेष हैं, इसीलिए यह मुझे देखकर पूर्व वरस्मरण के कारण भयभीत होकर भाग छूटा ।”

गौतम के आग्रह पर भगवान ने अपने त्रिपृष्ठ वासुदेव के जीवन की घटना सुनाई । “गौतम ! इस जन्म से नौ जन्म पूर्व में त्रिपृष्ठ नाम का राजकुमार हुआ था । तुम मेरे प्रिय सारथी थे । एक बार मैंने एक उपद्रवी केशरी सिंह को पकड़ कर हाथों से चीर डाला था । उस समय सिंह की अंतिम सांस जब छूट रही थी तब तुमने उसे प्रिय वचनों से संतुष्ट किया एवं मनुष्य के हाथों से मारे जाने पर अफसोस न करने को सान्त्वना दी थी ।<sup>८१</sup> उन अन्तिम समय के अनुगमय वचनों की स्मृति के कारण तुम्हारे प्रति इसके मन में अनुगम के संस्कार जन्मे और मेरे हाथ से मृत्यु होने के कारण मेरे प्रति इसके मन में वर एवं भय की भावना का संचार हुआ ।”<sup>८२</sup>

यह घटना सूत्र काफी लम्बा है, और इसके बीज भगवती सूत्र<sup>८३</sup> एवं उत्तराध्ययन सूत्र<sup>८४</sup> में विद्यमान हैं, जिनसे अनेक अन्य घटनाएँ भी पल्लवित हुई हैं । जिसकी चर्चा अगले पृष्ठों पर की जा रही है ।

इस घटना में सूक्ष्म रूप से गौतम की उपदेश कुशलता की एक विरल भाँकी मिलती है कि अज्ञान किसान को भी उन्होंने उपदेश देकर सुलभ बोधि बना दिया । यह तो स्पष्ट है कि किसान के समक्ष गौतम ने गम्भीर तत्त्व ज्ञान की गुत्थियाँ नहीं सुलझाई होंगी । उसे तो उस सामान्य एवं सरल उपदेश की आवश्यकता थी जो उसके सरल हृदय को छू सके और मोटी बुद्धि की पकड़ में आ सके । और यही उपदेशक की

८१. (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३४

(ख) त्रिपृष्ठशालाका० १०।१

८२. त्रिपृष्ठशालाका० १०।९

८३. भगवती शतक १४।७

८४. उत्तरा० अ० १०।२८ (टीका)

कुशलता है कि वह गम्भीर एवं सरल से सरलतम भाषा में अपनी बात का प्रभाव दूसरों पर डाल सके, और उन्हें अपना अनुयायी बना सके।

### प्रबुद्ध संदेशवाहक

गौतम की उपदेश कुशलता के साथ ही उनके व्यक्तित्व की एक और विशेषता है कि वे भगवान महावीर के प्रिय शिष्य होने के साथ ही विश्वस्त संदेश वाहक भी थे। भगवान महावीर जब अपने शिष्यों को विशेष धर्म संदेश देते तो प्रायः वह गणधर गौतम के माध्यम से दिया जाता था। वैसे सामान्य रूप में श्रमण वर्ग को जो शिक्षात्मक संदेश दिया जाता था वह भी गौतम के माध्यम से, या गौतम को संबोधित करके दिया जाता था। उत्तराध्ययन का दशवाँ अध्ययन इसका स्पष्ट प्रमाण है जहाँ बार-बार गौतम को संबोधित करके —“समयं गोयम मा पमायए” का घोष ध्वनित हो रहा है। भगवती सूत्र में भी इस प्रकार के अनेक स्थल हैं जिनमें उपदेश का माध्यम गौतम को बनाया गया है। “दूसरे प्रकार के कुछ विशेष संदेश जब भगवान महावीर किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके गौतम को देते तो गौतम उन्हें यथातथ्य रूप में उस पात्र तक पहुँचाते—यह भी एक घटना से स्पष्ट होता है।

राजगृह निवासी गाथापति महाशतक भगवान महावीर का उपासक था। उसके पास विपुल धन था। उसने तेरह स्त्रियों के साथ विवाह किये। रेवती नाम की उसकी पत्नी, जो बड़ी क्रूर एवं विशेष कामासक्त थी। उसने अपनी सभी सौतों को मरवा डाला था। वह मद्य एवं मांस का भी सेवन करती थी। रेवती के स्वभाव से महाशतक को घृणा हो गई। वह उससे विरक्त होकर उपवास पौषध आदि आत्म-साधना में प्रवृत्त हो गया।

एकबार रेवती मद्य के नशे में चूर हुई अत्यन्त कामातुर एवं निर्लज्ज होकर महाशतक के पास आई। उसे अपने कामपाश में बांधने के प्रयत्न करने पर भी जब महाशतक उससे सर्वथा विरक्त रहा, तो वह कहने लगी—‘प्रिय ! मुझे मालूम है तुम्हारे सिर पर धर्म का नशा चढ़ा है, तुम मुक्ति के इच्छुक होकर यह विरक्ति का ढोंग रच रहे हो, पर तुम नहीं जानते कि यदि मेरी इच्छा को तृप्त कर मेरे साथ काम भोग सेवन करते

हो तो वह मुक्ति के सुख से भी अधिक आनन्दप्रद है। आओ, मेरी इच्छा को तृप्त करो ।”

रेवती ने दो-तीन बार इस प्रकार महाशतक से निर्लज्जता पूर्ण आग्रह किया, अनेक प्रकार के कामोद्दीपक हावभाव दिखलाये। पर महाशतक उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहकर अपने संकल्प को और अधिक सुदृढ़ बनाने लगा। महाशतक के समक्ष अब इस प्रकार के प्रसंग आये दिन आने लगे। वह तपस्या एवं ध्यान से अपने शरीर को क्षीण एवं संकल्पों को वज्रसम अडिग बनाता रहा। जीवन के संध्या काल में महाशतक ने अपने समस्त पापों एवं अतिचारों की आलोचना करके आजीवन अनशन ग्रहण किया। जीवन एवं मरण की आकांक्षा से मुक्त होकर समाधिपूर्वक धर्म जागरण करते हुए आनन्द श्रावक की भाँति उसे अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ।

एकदिन जबकि महाशतक अनशन में धर्मजागरणा कर रहा था, रेवती पुनः मद्य के नशे में छकी हुई उसके निकट आई और विह्वलता पूर्वक काम प्रार्थना करने लगी। महाशतक मौन रहा। रेवती ने दूसरी बार भी उससे आग्रह किया, महाशतक फिर भी मौन था। अब तीसरी बार रेवती कामान्ध होकर उसे धिक्कारने लगी। उसके व्रतों एवं आचार पर तिरस्कार पूर्वक आक्षेप करने लगी और अन्त में जब अत्यन्त काम विह्वल हो गार्हित आचरण करने पर उतारू हुई तो महाशतक को क्रोध आ गया। उसने रेवती को अभद्र व्यवहार के लिए फटकारा और अवधि ज्ञान से उसका अन्धकार पूर्ण भविष्य बताते हुए कहा—“तू सात दिन के भीतर रोग से पीड़ित होकर मरेगी एवं रत्नप्रभा नरक के लौलुच्य नामक नरकवास में चौरासी हजार वर्ष की आयु प्राप्त करके अत्यन्त उग्र कष्ट पायेगी।”

महाशतक की आक्रोश पूर्ण वाणी सुनकर रेवती अत्यन्त घबरा उठी। उसे लगा पति ने मुझे शाप दे दिया है। वह रोती पीटती घर आई। भयानक रोग से पीड़ित होकर अन्त में सातवें दिन असमाधि पूर्वक जीवन की अन्तिम सांस छोड़ दी।<sup>८६</sup>

८६. भीया, तत्था, नसिया, उव्विग्गासण्णाय भया.....अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्ट दुहट्ट वसट्ठा काल मासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए..... नेरइयत्ताए उववन्ना।

—उवासगदशा ८।



भगवान महावीर ने महाशतक श्रावक के इस आक्रोश पूर्ण कथन की चर्चा गौतम से की। सारा घटना चक्र बताते हुए भगवान ने कहा—“गौतम ! श्रावक को इस प्रकार की, सत्य होते हुए भी अनिष्ट, अप्रिय, जिसे सुनने पर दुःख होता हो, विचार करने पर मन को चुभती हो, ऐसी वाणी नहीं बोलना चाहिए।” महाशतक श्रावक ने रेवती को इस प्रकार के आक्रोश पूर्ण वचन कहकर अपने व्रत को दूषित किया है, अतः तुम जाकर उसे कहो, वह अपने इस अतिचार की आलोचना, आत्म-निन्दा करके आत्मा को विशुद्ध बनाए।”

भगवान का धर्म संदेश लेकर गौतम राजगृह में महाशतक श्रावक के पास आये। महाशतक भगवान गौतम को आते देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, विनय पूर्वक वन्दना की। गौतम ने महाशतक को भगवान महावीर का धर्म संदेश सुनाते हुए कहा—“देवानुप्रिय ! तुमने जो इस प्रकार के आक्रोश पूर्ण कटुवचन कहकर रेवती की आत्मा को संतप्त किया, भयभीत किया यह उचित नहीं था। तुम्हें शांति एवं मौन ही श्रेयस्कर था। तुम अपनी भूल का प्रायश्चित्त करो, आलोचना करके आत्मा को निर्दोष बनाओ।”

गौतम के कथनानुसार महाशतक ने आत्म-आलोचना करके अन्त में समाधि मरण प्राप्त किया।

### अनन्य प्रभुभक्त

गौतम के जीवन के इन विविध रूपों को देखने से ज्ञात होता है कि वे जितने आत्म-साधना के प्रति निष्ठाशील थे, उतने ही लोककल्याण की भावना से कर्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहते थे। भगवान महावीर के लोक कल्याणकारी संदेश को जन-जन तक पहुँचाने में वे प्रतिक्षण प्रस्तुत थे। गागलि नरेश को प्रतिबोध देने हेतु पृष्ठचंपा जाने की घटना इस बात की साक्षी है कि वे भगवान महावीर के संकेत के अनुसार अपने संपूर्ण जीवन को न्यौछावर करने के लिए भी कृतसंकल्प थे।

८७. नो खलु कप्पइ गोयमा !.....संतेहि तच्चेहि तहिएहि, सब्भूएहि अणिट्ठेहि  
अकंतेहि अप्पिएहि अमणुप्पोहि.....वागरणेहि वागरित्तए ।

—उवासग दशा ८ ।

एक बार साल महासाल नामक राजर्षियों ने भगवान महावीर से पृष्ठचंपा के गागलि नरेश को प्रतिबोध देने के लिए जाने की आज्ञा मांगी। गागलि राजर्षि के गृहस्थ जीवन के भानजे थे। उपयुक्त अवसर देखकर भगवान ने गौतम स्वामी के साथ उन्हें पृष्ठचंपा की ओर भेजा।

गागलि नरेश ने गौतम स्वामी एवं अपने मामा मुनि के आने का संवाद सुना तो वह प्रसन्नता पूर्वक उन्हें वंदना करने गया। गौतम स्वामी की मधुर उपदेश शैली से प्रभावित होकर गागलि अपने पुत्र को राज्य तिलक करके स्वयं प्रव्रजित हो गया। गागलि के साथ ही उसके पिता पिठर एवं माता यशोमति ने भी दीक्षा ग्रहण की।

अपने आगमन का लक्ष्य पूरा करके गौतम स्वामी ने पांचों शिष्यों के साथ चम्पा की ओर विहार किया जहाँ भगवान महावीर धर्मदेशना दे रहे थे। मार्ग में साल-महासाल, पिठर, गागलि मुनि एवं यशोमती साध्वी पांचों ही अपने-अपने शुद्ध विचारों की उत्कृष्टता के कारण क्षपक श्रेणी को प्राप्त करके केवल ज्ञान की भूमिका पर पहुँच गये। उनके केवलज्ञान की घटना गौतम को विदित नहीं हुई। जब वे चम्पा में पहुँच कर भगवान के समवसरण में प्रविष्ट हुए और प्रभु की वंदना प्रदक्षिणा करके केवली परिषद् की ओर जाने लगे तो गौतम स्वामी को उनके व्यवहार की अनभिज्ञता पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने मुनियों को टोकते हुए कहा—“मुनियो ! क्या आपको जिनेंद्र भगवान की धर्मपरिषद् की विधि का ज्ञान नहीं है ? आप लोग कहाँ जा रहे हैं ?”

गौतम स्वामी के कथन पर भगवान ने कहा—“गौतम ! मुनियों का आचरण ठीक है ये केवल ज्ञानी हो गए हैं तुम केवली की अशांतता मत करो।”

८८. त्रिपिटकशलाका० १०/९ श्लोक १६६-१६७

इसी घटना के साथ जुड़ी हुई एक अन्य घटना भी प्रसिद्ध है जिसकी चर्चा आचार्य अभयदेव (भगवती टीका १४।७) एवं नेमिचन्द्र ने (उत्तराध्ययन १०।१) में की है—वह इस प्रकार है—

एक बार गौतम स्वामी अष्टापद पर्वत पर गए। वहाँ कौडिन्य, दिन्न एवं सेवाल नामक तीन तापसों के साथ पाँच-पाँच सौ तापसों के समूह अष्टापद की यात्रा को आए हुए थे। वे अष्टापद पर चढ़ने में असमर्थ हो रहे थे। गौतम स्वामी अपने ऋद्धिबल से अष्टापद पर तुरन्त चढ़ गये।

( अगले पृष्ठ पर देखिए )

हाँ तो भगवान की वाणी सुनकर गौतम को बड़ा आश्चर्य हुआ। साथ ही अपनी छद्मस्थता पर उन्हें खेद भी हुआ कि ये मेरे शिष्य तो सर्वज्ञ हो गए और मैं अभी तक छद्मस्थ ही रहा। गुरु जी गुड़ ही रहे और चले शक्कर हो गये—कहावत जैसी बात हो गई ?

### मुक्ति का वरदान



प्रस्तुत घटना ने गौतम के मन को बहुत झक-झोरा, शिष्यों की प्रगति एवं अभिवृद्धि से उनके उदार मन को कोई ईर्ष्या नहीं थी, किन्तु स्वयं इतनी तपस्या, साधना, ध्यान, स्वाध्याय आदि करने पर, तथा प्रभु के प्रति अनन्य श्रद्धा रखने पर भी अब तक छद्मस्थ ही रहे इस बात से उनके मन को बड़ी चोट पहुँची। वे अपने मन की गहराई में उतरे होंगे। आत्म-निरीक्षण करने लगे होंगे कि 'आखिर मेरी साधना में क्या कमी है ? मेरे अध्यात्म योग में कौन सी रुकावट आ रही है जिसे तोड़ सकने में मैं अब तक असमर्थ रहा हूँ।' हो सकता है जब इस प्रकार का कोई कारण उनके सामने नहीं आया हो तो वे बहुत खिन्न हुए हों, चिंतित हुए हों और तब भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य की खिन्नता एवं मनोव्यथा दूर करने के लिए सान्त्वना देने के रूप में कहा—'गौतम ! तुम्हारे मन में मेरे प्रति अत्यंत अनुराग है, स्नेह है, उस स्नेहबंधन के कारण ही तुम अपने मोह का क्षय नहीं कर पा रहे हो, और वही मोह तुम्हारी सर्वज्ञता में मुख्य अवरोध बना हुआ है।' प्रभु

---

तापसों को आश्चर्य हुआ "यह दृष्ट-पुष्ट मांसल शरीर वाला साधु इतनी त्वरित गति से कंसे अष्टापद का आरोहण कर सका, जबकि हम बहुत समय से प्रयत्न करते हुए भी समर्थ नहीं हो रहे हैं।" गौतम स्वामी के वापस आने पर उनसे वार्तालाप किया और पन्द्रह सौ तीन तापसों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। गौतम स्वामी ने उनको अपनी (अक्खीणमहानस) लब्धि के बल खीर से पारणा करवाया और भगवान महावीर के समवसरण में उनको लेकर आये। गौतम स्वामी एवं भगवान के गुण चिन्तन से उत्कृष्ट परिणाम आने पर उन्हें भी कैवल्य प्राप्त हो गया, वे भी उसी प्रकार केवली परिषद् में जाने लगे और गौतम स्वामी ने टोका तब भगवान ने स्थिति का स्पष्टीकरण किया।

देखिए—कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित, गणधरवाद की भूमिका (दलमुख मालवणिया पृ० ६६)।

महावीर की यह वाणी भगवती सूत्र में इस प्रकार अक्षर निबद्ध हुई है<sup>१९</sup>—“गौतम तुम गहुत अतीत काल से मेरे साथ स्नेह बन्धन में बंधे हो, तुम जन्म-जन्म से मेरे प्रशंसक रहे हो, मेरे परिचित रहे हो, अनेक जन्मों में मेरी सेवा करते रहे हो, मेरा अनुसरण करते रहे हो, और प्रेम के कारण मेरे पीछे-पीछे दौड़ते रहे हो। पिछले देव भव, एवं मनुष्य भव में भी तुम मेरे साथी रहे हो। इस प्रकार अपना स्नेह बन्धन सुदीर्घ कालीन है, मैंने उसे तोड़ डाला है, तुम नहीं तोड़ पाए। विश्वास करो, तुम भी (अति शीघ्र बंधन से मुक्त होकर) अब यहाँ से देह मुक्त होकर हम दोनों एक समान, एक लक्ष्य पर पहुँचकर भेद रहित तुल्य रूप प्राप्त कर लेंगे।”

भगवान का भक्त के प्रति यह आश्वासन वास्तव में एक बहुत बड़ा आश्वासन है, जिसे सुनकर गौतम की समस्त खिन्नता, मनोव्यथा हवा में उड़ गयी होगी और अपूर्व प्रसन्नता से रोम-रोम पुलक उठा होगा।

वैदिक भक्ति परम्परा में जब भगवान भक्त पर प्रसन्न होता है, तो उसे पुनः भक्त बनने का वरदान देता है, और भक्त इस भगवद् कृपा को सर्वश्रेष्ठ कृपा समझकर कृत-कृत्य हो जाता है। किन्तु जैन परम्परा भक्त को भक्त ही नहीं, भगवान बनने का वरदान देती है, और उसके भगवान स्वयं अपने श्री मुख से कह रहें हैं—“तुम भी

८९. पिछली घटना चंपानगरी में हुई है, और भगवान महावीर का यह कथन राजगृह में हुआ है, संभवतः इस बीच जैसा कि अष्टापद की घटना से परिलक्षित होता है वह घटना घटित हुई हों, और बार-बार ऐसी घटना होने से गौतम की खिन्नता बड़ी हो, और तब भगवान ने निम्न आश्वासन दिया हो—“चिर संसिद्धोऽसि मे गोयमा ! चिर संशुओऽसि मे गोयमा ! चिर परिचिओऽसि मे गोयमा । चिर जुसिओऽसि मे गोयमा ! चिराणु गओऽसि मे गोयमा ! चिराणुवत्तीसि मे गोयमा ! अणंतरं देवलोए, अणंतरं माणुस्सए भवे, कि परं मरणा कायस्स भेदा । इओ चुआ दोवितुल्ला एगट्ठा अविसेस मणाणत्ता भविस्सामो ।

—भगवती सूत्र १४।७

गौतम से स्नेह बंधन तोड़ने के लिये भगवान महावीर ने अनेक बार उपदेश किया होगा, वीतरागता की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया होगा यह आगमों में आये अनेक उपदेशों से ध्वनित होता है। उत्तराध्ययन १०।२८ में भी गौतम को सम्बोधित करके कहा गया है—“वोच्छिद सियोहमप्पणो कुमुयं सारइयं पाणिना ।”

—उत्त० १०।२८

मेरे समान सिद्ध बुद्ध मुक्त बनोगे।” इस वरदान को पाकर कौन भक्त प्रसन्नता से नहीं झूम उठेगा।

इस घटना से गौतम का भगवान महावीर के प्रति अनन्य स्नेह एवं अद्वितीय भक्ति प्रकट होती है। और उसमें कितनी मधुरता है, कितनी एकनिष्ठता है यह तो आगमों के अनुशीलन से पद-पद पर प्रकट होती दिखाई देती है। एक भगवती सूत्र में ही कई हजार बार-‘गोयमा’ इस सम्बोधन की आवृत्ति हुई है। अन्य आगमों भी संकड़ों बार स्थान-स्थान पर भगवान अपने प्रिय भक्त-गौतम को.....‘गोयमा।’ सम्बोधन से जब पुकारते हैं तो लगता है सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में भी शायद ही ऐसा कोई जिज्ञासु एवं अनन्य भक्त हुआ हो जिसे भगवान अपने श्रीमुख से बार-बार पुकार रहे हों। भगवान के श्रीमुख से यह मधुर संबोधन सुनकर भक्त गौतम भी श्रद्धा गद्गद् होकर धन्य-धन्य हो उठते होंगे। गौतम की एकनिष्ठा का उत्तर आगमों में उन्हीं को वाणी से दिया गया है। जब भगवान से किसी प्रश्न का समाधान गौतम को मिला तो वे एक अपूर्व प्रसन्नता एवं श्रद्धा से भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं—‘सेवं भंते ! सेवं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितह मेयंभंते !’—भगवन् ! आपने जैसा कहा वैसा ही है, आपका कथन सत्य है, पूर्ण सत्य है, मैं उस पर विश्वास करता हूँ, श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ।”

गुरु के समाधान पर शिष्य का यह श्रद्धा एवं निष्ठा पूर्ण उत्तर वास्तव में एक उदात्त परम्परा का प्रेरक है। गौतम जैसा व्यक्ति जो जीवन के प्रारम्भ में प्रखर तार्किक रहा हो, स्वयं भगवान महावीर से वाद विवाद एवं दर्शन की गम्भीर चर्चाओं से समाधान खोज रहा हो, वही भगवान के प्रति इतना श्रद्धा एवं निष्ठा पूर्ण होकर समर्पित हो जाता है, यह वास्तव में तर्क पर श्रद्धा की विजय का एक अकाथ्य प्रमाण है, साथ ही भक्ति की एक निष्ठा का अपूर्व उदाहरण भी। गौतम के जीवन की इन्हीं विरल विशेषताओं के कारण उन्हें अनन्य प्रभु भक्त कहा गया है।

### महान जिज्ञासु

गणधर गौतम के व्यक्तित्व में ‘जिज्ञासा’ तत्त्व प्रारम्भ से ही प्रबल रहा है यह पिछले घटना चक्र से स्पष्ट हो जाता है। जिज्ञासा ने ही उन्हें यज्ञ मण्डप से भगवान महावीर की ओर मोड़ा, जिज्ञासा ने ही उन्हें याज्ञिक ब्राह्मण से श्रमणत्व का परिचय दिया और इस जीवित जिज्ञासा ने ही भगवान महावीर के उपदेशों एवं प्रवचनों को

गणिपिटक का रूप दिया। आज का उपलब्ध श्रुत साहित्य गौतम की जिज्ञासा का जीवित रूप है—यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

गौतम जब कभी किसी विशेष नई घटना को देखते, कोई नवीन चर्चा सुनते, किसी आश्चर्यकारी प्रसंग का ऊहापोह होता तो वे तुरन्त उस विषय में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते।

विपाक सूत्र<sup>१०</sup> में एक घटना आती है। मृगाग्राम नगर में विजय नामक क्षत्रिय राजा था जिसकी मृगादेवी नामक लावण्य युक्त सुन्दरी रानी की। उस मृगादेवी को एक पुत्र हुआ जो जन्म से ही अंधा, बहरा, गूँगा था। जिसके हाथ, पैर, नाक, कान आदि भी नहीं थे। केवल अंगहीन एक गोलमटोल आकृति थी। मृगादेवी उस बालक को अपने भूमि गृह में रखती और उसका पालन पोषण करती।

एक बार श्रमण भगवान महावीर उस मृगाग्राम के चन्दन पादप नामक उद्यान में पधारे। प्रभु का आगमन सुनकर नगर के हजारों श्रद्धालु दर्शनार्थ गये। नगर में चारों ओर एक अपूर्व उत्सव जैसी हलचल मच गई थी। विजय क्षत्रिय भी भगवान का उपदेश सुनने गया।

उस ग्राम में एक जन्म से अन्ध दरिद्र भिखारी रहता था। उसके सिरके केश अत्यन्त रूक्ष एवं बिखरे हुए, दीखने में बड़ा कुरूप एवं बीभत्स था। उसके गन्दे कपड़ों पर मक्खियों के झुण्ड के झुण्ड भिनभिनाते रहते। कोई उसके पास से गुजरना नहीं चाहता—ऐसी दरिद्रता की साक्षात् मूर्ति था वह जन्मान्ध भिखारी। एक कोई आँख वाला आदमी उसकी लकुटिया पकड़कर द्वार-द्वार पर उसे घुमाता और भिक्षा माँग कर आजीविका करता। उस भिखारी ने नगर में लोगों के आनेजाने का कोलाहल सुना तो किसी से पूछा—आज नगर में क्या इन्द्रमहोत्सव, स्कन्दमहोत्सव आदि कोई उत्सव है? क्या बात है आज, इतनी हलचल क्यों?

भिखारी के प्रश्न को बहुतों ने सुना अनसुना कर दिया। किसी ने बताया—“तुझे मालुम नहीं? आज भगवान महावीर नगर के चन्दन पादप उद्यान में पधारे हैं, उनकी वाणी सुनने को जनता उमड़ी जा रही है।” अंधा भिखारी भी भगवान का उपदेश सुनने को उत्सुक हुआ और समवसरण की ओर गया। गणधर गौतम ने हजारों मनुष्यों के पीछे खड़े इस दरिद्र नारायण जन्मान्ध को देखा तो उसकी दयनीय

दशा पर उनका हृदय पसीज गया। गौतम ने भगवान से पूछा—<sup>९१</sup> ‘भन्ते ! इस नगर में ऐसा जन्म अन्ध एवं जन्म अन्धरूप अन्य भी कोई है ?’

भगवान ने कहा—“हाँ, गौतम इससे भी अधिक बीभत्स आकारवाला जन्म-अन्धरूप एक पुरुष इस नगर में है ?”

गौतम की जिज्ञासा और प्रबल हुई। पूछा—“भन्ते ! वह जन्मान्ध रूप पुरुष कौन है ?”

भगवान—“गौतम ! इस नगर के नायकविजय क्षत्रिय की पत्नी मृगादेवी का आत्मज ‘मृगापुत्र’ नामक एक बालक है, जो जन्म से अन्धा है, उसके न हाथ पाँव हैं, न कान-नाक आदि अंगोपांग। केवल अंगों का आकार मात्र है। उसे मृगा-देवी अपने भूमिगृह में रख कर उचित पाजन-पोषण कर रही है।”

गौतम की जिज्ञासा प्रबल हो उठी ! भगवान की आज्ञा लेकर वे मृगापुत्र को देखने के लिए मृगादेवी के महल की ओर चले। मृगादेवी ने प्रसन्नता पूर्वक गौतम-स्वामी का स्वागत किया और पूछा—“भन्ते ! आप ने यहाँ पधारने का कष्ट किस-लिए किया, आज्ञा दीजिए—‘संदिस तु णं देवानुप्पिया ! किमागमणपयोयणं ?’

गौतम ने बताया ‘देवी ! मैं तुम्हारे पुत्र को देखने के लिए यहाँ आया हूँ।’

मृगादेवी ने मृगापुत्र के पीछे जन्मे हुए अपने चार पुत्रों को अलंकृत विभूषित किया, और गौतम स्वामी के चरणों में गिराकर कहा—‘भगवन् ! ये मेरे पुत्र हैं, इन्हें देखिए !’

“देवानुप्रिया ! मैं इन पुत्रों को देखने के लिए नहीं, किन्तु तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को, जो जन्म से नेत्रहीन है, जिसे तुम भूमिगृह में छुपा के रखती हो, उसे देखने के लिए यहाँ आया हूँ।”

मृगादेवी ने आश्चर्य पूर्वक गौतम से पूछा—“भन्ते ! ऐसा ज्ञानी एवं तपस्वी कौन है जिसने मेरे इस अत्यन्त प्रच्छन्न वृत्तान्त को आपके समक्ष सूचित किया है ? जिस कारण आप यहाँ आये हैं ?”

गौतम स्वामी ने अत्यन्त सरल भाव से कहा—“देवानु प्रिये ! मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर ने मुझे यह सब वृत्तान्त बताया है।”

९१. अत्थिणं भन्ते ! केई पुरिसे जाति अन्धे, जाय अंध रूवे ?

—विपाकसूत्र १।१

मृगादेवी गौतम के साथ वार्तालाप कर ही रही थी कि मृगापुत्र के भोजन का समय हो गया। उसने कहा—“भंते ! आप ठहरिये, अभी आप उसे देख सकेंगे।” पश्चात् मृगादेवी ने अपने वस्त्र बदले, एक लकड़ी की गाड़ी में भोजन सामग्री रखी और गौतम स्वामी को अपने पीछे-पीछे चले आने का संकेत देकर उस भूमिगृह की ओर आई। भूमिगृह के द्वार पर पहुँच कर उसने वस्त्र से अपना नाक-मुँह ढँका, गौतम स्वामी से भी ढँकने को कहा। मृगादेवी ने द्वार की ओर पीठ करके भूमिगृह का द्वार खोला। उसमें से भयंकर बदबू आ रही थी, फिर भी गौतम ने उस बालक को देखा। अंग के नाम पर सिर्फ एक मुँह था। जिस मुख से खा रहा था उसी से वापस निगल रहा था और फिर उसी वमन को चाट रहा था। उस बीभत्स एवं दयनीय रूप को देखकर गौतम के रोम-रोम उत्कण्ठित हो गये। गौतम मृगादेवी को सूचित कर पुनः अपने स्थान पर आये और प्रभु से पूछा—“भंते ! आपने जैसा बताया वैसा ही वह जन्मान्ध रूप पुरुष है ! उसने पूर्व जन्म में किस प्रकार के दुष्कर्म, घोर कर्म किये होंगे जिनके फलस्वरूप वह इस प्रकार अत्यन्त कष्टमय, दुर्गन्धपूर्ण बीभत्स जीवन जी रहा है ?”

भगवान ने गौतम के प्रश्न पर उसके अतीत जीवन के दुष्कर्मों की लोम-हर्षक कहानी सुनाई, जिसका विस्तृत वर्णन विपाक सूत्र में किया गया है।

सम्पूर्ण विपाक सूत्र गौतम की इसी प्रकार की जिज्ञासाओं का एक उत्तर है। गौतम अगले अध्यायों में भी वधभूमिका ले जाते हुए अपराधियों को देखते हैं और उसके भूत-भावी जीवन का लेखा जोखा भगवान से आकर पूछते हैं।

ऐसा लगता है कि गौतम के मन में जिज्ञासाओं का अम्बार लगा है, जब कभी किसी प्रसंग से वे कुरेदी जाती हैं तो वे प्रश्न रूप में भगवान के समक्ष अवतरित हो जाती हैं। जब वे कोई भी नई बात देखते हैं तो उसके मूल तक जाने का प्रयत्न करते हैं, उसके कारणों का विश्लेषण सुनना चाहते हैं और चाहते हैं उसके भूतकालीन निमित्त-उपादान का लेखा-जोखा, एवं भावी परिणामों की अवगति।

भगवती सूत्र में एक प्रसंग है। भगवान महावीर एकबार ब्राह्मण कुण्ड ग्राम में पधारे। वहाँ ऋषभदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था जो धनाढ्य होने के साथ-साथ बहुत बड़ा विद्वान् भी था। वह चारों वेद, पडंग, पुराण आदि का पारंगत था, और



निर्ग्रन्थ धर्म के रहस्यों को भली प्रकार जानने वाला श्रमणोपासक भी ।<sup>९१</sup> ऋषभदत्त की पत्नी थी देवानन्दा ।

भगवान महावीर के आगमन की सूचना पाकर ऋषभदत्त एवं देवानन्दा उनके दर्शनों के लिए गये । देवानन्दा ने भगवान महावीर का अतिशय सम्पन्न दिव्य रूप देखा तो उसके मन में वात्सल्य की धारा उमड़ पड़ी । वह रोमांचित हो गई और पुत्र स्नेह का भाव प्रबल हो उठा । उसकी दोनों आँखों से आनन्द के आँसू बरसने लग गये और भावावेग में उसकी कंचुकीं के बन्धन शिथिल होकर, स्तनों से दूध की धारा बहने लग गई ।

गौतम स्वामी ने जब देवानन्दा को इस प्रकार रोमांचित होकर स्तनों से दूध की धारा बहाते देखा तो बड़ा आश्चर्य हुआ । भगवान महावीर से पूछा—“भंते ! देवानन्दा इस प्रकार क्यों, किस कारण रोमांचित हो रही है ?”

भगवान ने कहा—“गौतम ! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है, मैं इस देवानन्दा ब्राह्मणी का पुत्र हूँ । इसी पुत्र-स्नेह के कारण आनन्द का वेग उमड़ पड़ा, वह उसे रोक नहीं पाई, और इस प्रकार रोमांचित हो उठी ।”<sup>९२</sup>

गौतम के मन में एक प्रश्न के समाधान के साथ ही दूसरा प्रश्न उठा—“भंते ! आपकी माता तो त्रिशला क्षत्रियाणी है—ऐसा सर्वविदित है । फिर देवानन्दा आपकी माता किस प्रकार हो सकती है ?”

गौतम के प्रश्न पर भगवान ने गर्भपरिवर्तन की घटना की चर्चा की, जिसे सुनकर ऋषभदत्त-देवानन्दा सहित सम्पूर्ण परिषद् को आश्चर्य हुआ ।<sup>९३</sup>

९२. कल्पसूत्र एवं भगवती आदि सूत्रों के आधार पर ज्ञात होता है कि ऋषभदत्त पहले तो वैदिक धर्म का अनुयायी ही था, पर बाद में ‘श्रावक’ बन गया । भगवान महावीर पहले देवानन्दा की कुक्षी में आये थे । इस दृष्टि से देवानन्दा को माता एवं ऋषभदत्त को पिता कहा गया है ।

९३. गोयमा ! देवाणंदा माहणी मम अम्मगा, अहं णं देवाणंदाए माहणीए अत्तए.....तेणं पुव्व पुत्त सिण्हं रागेणं आगयं—पण्हया जाव समुसविय रोमक्खा  
—भगवती श० ९ । उ० ६

९४. विशेष विवरण के लिए देखें (क) त्रिवष्टिशलाका० १०।८।१०-१८ (ख) तीर्थंकर महावीर भा० १ पृ० १०३ (ग) महावीर चरियं (गुणचन्द्र) पत्र २५९-२

इस प्रकार आगम साहित्य में गौतम की जिज्ञासाओं की अनेक घटनाएँ विभिन्न प्रसंगों के साथ जुड़ी हुई हैं। गौतम के प्रश्नों की उत्थानिका में भी किसी न किसी सूक्ष्म घटना का उल्लेख आता है। गौतम देखते हैं, सुनते हैं और फिर तत्काल भगवान के पास जाकर उसकी जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।<sup>१५</sup>

भारतीय वाङ्मय में गौतम की जोड़ी का जिज्ञासा प्रधान व्यक्तित्व मिलना कठिन ही नहीं, प्रायः असम्भव है। गौतम के प्रश्नों और जिज्ञासाओं ने तीर्थंकर महावीर के चिन्तन एवं दर्शन को वाङ्मय का रूप दिया है। गम्भीर से गम्भीर एवं सरल से सरल सभी प्रकार के प्रश्न गौतम ने उपस्थित किए हैं, उनके मूल तक पहुँचे हैं और उन पर भगवान महावीर के समीचीन समाधान प्राप्त कर जैन साहित्य के अध्येता के लिए एक व्यवस्थित मार्ग प्रस्तुत किया है। जैनसाहित्य गौतम का चिर-श्रुणी रहेगा, बल्कि गौतम के नाम से वह सदा प्रकाशमान भी रहेगा। जिस प्रकार कि संस्कृत साहित्य कालिदास के नाम से, हिन्दी साहित्य तुलसी एवं सूर के नाम से, अंग्रेजी साहित्य शेक्सपियर के नाम से और रूसी साहित्य गोर्की के नाम से आज भी अपने को गौरवान्वित समझते हैं, वही नहीं, बल्कि उससे भी अधिक गौरव जैन श्रुत साहित्य को गणधर इन्द्रभूति गौतम के नाम से है।

बौद्ध पिटकों में अनेक स्थानों पर आनन्द द्वारा प्रश्न उपस्थित किए गए हैं और तथागत ने उनका समाधान किया है। पर परिमाण एवं विषय वस्तु की दृष्टि से वे बहुत ही अल्प हैं, गौतम-महावीर के प्रश्नों की तुलना में बहुत ही नगण्य ! अन्य ग्रन्थों में तो इस प्रकार की शैली का दर्शन भी अत्यल्प मात्रा में होता है।

## गौतम का जीवन दर्शन



गणधर गौतम के छद्मस्थ जीवन की एतद् प्रकार की सैकड़ों घटनाएँ जैन आगमों में संगुम्फित हुई हैं—जिनमें उनके बहुमुखी सार्वभौमिक व्यक्तित्व के अनेक आन्तरिक गुण उजागर हुए हैं। उनके जीवन में ज्ञान और क्रिया के दोनों पक्ष सुदृढ़ एवं सबल रहे हैं, दोनों की समुज्ज्वलता चरम कोटि की है। ज्ञान के साथ विनम्रता,

---

१५. देखिए पुद्गल परिव्राजक की चर्चा, तुंगिया नगरी के लोगों का प्रश्नोत्तर आदि—भगवती ११।१२, २।५

सत्योन्मुखी जिज्ञासा, नया ग्रहण करने की उत्कट अभिलाषा है तो क्रिया के साथ उदग्रता, सरलता निरहंकारिता, भक्ति एवं हृदय की उदारता का भी अदभुत सम्मिश्रण उनके जीवन दर्शन में प्राप्त होता है ।

### गौतम की सराग-उपासना



गौतम ने पचास वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की ।<sup>१६</sup> जिस दिन भगवान महावीर को कैवल्य हुआ उसके दूसरे दिन ही उनकी प्रव्रज्या हुई और भगवान महावीर की विद्यमानता में उन्हें केवल ज्ञान नहीं हुआ । यद्यपि उनकी साधना परम उज्ज्वल एवं उत्कट थी, उनकी क्रिया श्रमणसंघ के लिए अनुकरणीय एवं आदर्श बताई गई हैं । धन्य अणगार जैसे तपस्वियों के वर्णन में भी गौतम स्वामी का उदाहरण दिया गया है ।<sup>१७</sup> उनके द्वारा दीक्षित सैकड़ों हजारों शिष्य केवली हो गए ।<sup>१८</sup> फिर भी गौतम स्वामी को तीस वर्ष तक केवल ज्ञान नहीं हुआ, यह एक आश्चर्य की बात है । इसके कारणों की खोज में सम्पूर्ण आगम वाङ्मय सिर्फ एक ही उत्तर देता है और वह है गौतम का भगवान महावीर के प्रति स्नेह बन्धन ।<sup>१९</sup> इतने बड़े साधक, जो शरीर रहते हुए भी शरीरमुक्त स्थिति का अनुभव करते रहे, जिनके लिए स्थान-स्थान पर 'उच्छूढ शरीरे'<sup>२०</sup> विशेषणों का प्रयोग हुआ, वे अध्यात्म की उच्चतम भूमिका पर पहुँचे हुए अध्यात्म योगी भगवान महावीर के प्रति स्नेह बन्धन के कारण वीतराग स्थिति नहीं प्राप्त कर सके यह आश्चर्यकारी बात होते हुए भी जैन दृष्टि के 'समत्वयोग' की निष्पक्ष उद्घोषणा भी है । जो साधक अपने देह की ममता से मुक्त है, किन्तु अपने भगवान के प्रति यदि अनुराग रखता है, तो भले ही यह उसका भगवद् अनुराग हो, किन्तु आखिर वह भी बन्धन है, भगवदनुराग भी उसकी वी तरागताका बाधक है, क्यों न हो, जिस धर्म का आराध्य भगवान स्वयं वीतराग है, वह अपने भक्तों को भी सराग-उपासना से भक्ति का वरदान कैसे दे सकता है ? जैन

१६. आवश्यक नियुक्ति

१७. औपपातिक सूत्र (धन्य अणगार वर्णन)

१८. (क) कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी पृ० १६९-१७१

(ख) कल्पसूत्र बालावबोध पृ० २६०

१९. भगवतीसूत्र १४।७

१००. भगवती सूत्र १।१. उवासग दशा १।, औपपातिकसूत्र

दर्शन को आध्यात्मिक दृष्टि ने 'राग' को स्पष्टतः ही बन्धन स्वीकार किया है।<sup>१०१</sup> फिर भले ही वह प्रगस्त (शुभ) हो या अप्रगस्त। हां, प्रगस्त राग, राग की ऊर्ध्वदशा है, वह भले ही जीवन में काम्य न हो, पर अप्रगस्त की भांति त्याज्य भी नहीं है, अतः उसे पुण्य रूप अवश्य माना गया है।<sup>१०२</sup> किन्तु आत्म साधक के लिए वह पुण्य भी बन्धन है, चाहे सोने की बेड़ी के रूप में ही हो, अतः वह त्याज्य ही है।<sup>१०३</sup>

गौतम के अन्तःकरण में प्रभु महावीर के प्रति जन्म-जन्मान्तर-संश्लिष्ट-अनुराग था। वही उन्हें वीतराग बनने से रोक रहा था। भगवती सूत्र<sup>१०४</sup> में स्वयं भगवान ने उस अनुराग का वर्णन किया है और गौतम को सम्बोधित करके कहा है—'बुच्छिदसिणेहमपणो—'<sup>१०५</sup> अपने स्नेह बन्धन को यों तोड़ डाल, जैसे शरद ऋतु के कमल दल को हाथ के झटके से तोड़ दिया जाता है।

प्रभु का उपदेश, उद्बोधन प्राप्त करके भी गौतम इस सूक्ष्म राग को नहीं तोड़ सके और इसी कारण वीतराग-दशा प्राप्त नहीं कर सके।

### पावा में अंतिम वर्षावास

भगवान महावीर ने अपना अंतिम वर्षावास पावा<sup>१०६</sup> (अपापापुरी) में किया। वहाँ हस्तिपाल राजा था। उसकी रज्जुकशाला (लेख शाला) में भगवान स्थिरवास रहे।

कार्तिक अमावस्या का दिन निकट आया, अंतिम देशना के लिए समवसरण की विशेष रचना की गई। शक्र ने खड़े होकर भगवान की स्तुति की, फिर हस्तिपाल

१०१. (क) दुविहे बन्धे—पेज्जबन्धे चेव दोसबन्धे चेव—स्थानांग—२।४

(ख) रागो य दोसो वि य कम्मवीयं—उत्त० ३२।७

(ग) समयसार २६५

१०२. पंचास्तिकाय १३५

१०३. वहीं, गा० १४२,

१०४. शतक १४।७

१०५. उत्तराध्ययन १०।२८

१०६. 'पावा' के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखें-आगम और त्रिपिटक: एक अनुशीलन (मुनि नगराज जी डी० लिट्०) पृ० ५४

राजा ने भगवान की स्तुति की। भगवान ने सोलह प्रहर की देशना दी।<sup>१००</sup> उस दिन भगवान छट्ठ भक्त से उपोसित थे।<sup>१००</sup> देशना के पश्चात् अनेक प्रकार की प्रश्न चर्चाएँ हुई। राजा पुण्यपाल ने अपने आठ स्वप्नों का फल पूछा, उत्तर सुनकर वह संसार से विरक्त हुआ।<sup>१०१</sup> फिर गणधर गौतम ने पाँचवें आरे के सम्बन्ध में प्रश्न किये—  
“भंते ! आपके परिनिर्वाण के पश्चात् पाँचवा आरा कब लगेगा ?”

भगवान ने उत्तर दिया—“तीन वर्ष साढ़े आठ मास बीतने पर।” आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले तीर्थंकर, वासुदेव, बलदेव, कुलकर आदि का भी सामान्य परिचय गौतम के उत्तर में भगवान ने दिया। तदनन्तर गणधर सुधर्मा ने प्रश्न किया और उनका भी उत्तर भगवान ने दिया।

देवराज इन्द्र ने भगवान के परिनिर्वाण का अंतिम समय निकट आया देखकर अश्रुपूरित नयनों से प्रभु से प्रार्थना की—“भगवन् ! आपके जन्मनक्षत्र (हस्तोत्तरा) में भस्मग्रह संक्रमण कर रहा है, उसका दुष्प्रभाव दो हजार वर्ष तक आपके धर्मसंघ पर रहेगा, अतः आप कुछ काल के लिए अपने आयुष्य की वृद्धि करें।”

देवराज के उत्तर में भगवान ने कहा—“शक्र ! आयुष्य कभी बढ़ाया नहीं जा सकता।”<sup>११०</sup>

### गौतम को कैवल्य



उसीदिन भगवान ने देखा—आज मेरा निर्वाण होने वाला है, मुझ पर गौतम का अत्यंत अनुराग है, इसी अनुराग के कारण मृत्यु के समय वह अधिक शोक विह्वल न हो, और दूर रहकर अनुराग के बंधन को तोड़ सके अतः देवशर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए अन्यत्र भेज दिया। “अज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया” गुरुजनों की आज्ञा शिष्य को अविचारणीय एवं अतर्कणीय होती है। गौतम ने प्रभु का आदेश शिरोधार्य किया और देवशर्मा को प्रतिबोध देने चल पड़े।

१०७. सौभाग्य पंचम्यादि पर्व कथा संग्रहः पत्र १००

१०८. कल्पसूत्र सूत्र १४७, महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) पत्र ९९

१०९. विस्तार के लिए देखिए—तीर्थंकर महावीर भा० २ पृ० २९५ (विजयेन्द्र सूरि)

११०. स्वाम्यूचे शक्र ! केनापि नायुः सन्धीयते क्वचित् ।

—कल्पसूत्र, कल्पार्थ प्रबोधिनी पत्र १२१

रात्रि में भगवान का परिनिर्वाण हो गया। गौतम स्वामी को जब इसकी खबर लगी तो वे एकदम मोह-विह्वल हो गये। उनके हृदय पर वज्राघात-सा लगा। वे मोहदशा में—“भंते ! भंते !” पुकार उठे। भगवान को उलाहना देते हुए कहने लगे “प्रभु ! आपने यह क्या धोखा किया ? जीवन भर छाया की भाँति मैं आपकी सेवा में रहा, और आज अपने अंतिम समय में आपने मुझे दूर कर दिया ? क्या मैं बालक की तरह आपका अंचल पकड़ कर मोक्ष जाने से रोकता था ? क्या मेरे स्नेह में कोई कृत्रिमता थी ? यदि मैं भी आपके साथ चलता तो सिद्ध शिला पर कौन सी संकीर्णता हो जाती ? क्या शिष्य भी गुरु के लिए भार स्वरूप बन जाता ? प्रभो ! अब मैं किसके चरणों में प्रणाम करूँगा ? कौन मेरे मन के प्रश्नों का समाधान करेगा ? किसे मैं भन्ते ! कहूँगा, और कौन मुझे—‘गोयमा’ कह कर पुकारेगा ?”<sup>१११</sup>

कुछ क्षण इस प्रकार की भाव विह्वलता में बहने के पश्चात् इन्द्रभूति ने अपने आपको संभाला। उस तत्त्वज्ञानी महान् साधक ने अपने मन के घोड़े को धेरा। और विचार करने लगे—“अरे ! यह मेरा मोह कैसा ? वीतराग के साथ स्नेह कैसा ? भगवान तो वीतराग है, मैं व्यर्थ ही उनके राग में फँसा हुआ हूँ। वे तो राग मुक्त होकर मोक्ष पधार गये ! अब मुझे भी राग छोड़ना चाहिए ! मुझे अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिए, वही एक मेरा परम साथी है, बाकी सब बंधन हैं, पर हैं।” इस प्रकार आत्म-चिंतन की उच्चतम दशा पर आरोहण करते हुए इन्द्रभूति ने अपने राग को क्षीण किया और उसी रात्रि के उत्तरार्ध में केवल ज्ञान प्राप्त किया।<sup>११२</sup>

१११. भगवान महावीर के निर्वाण पर जिस प्रकार की मोहदशा गौतम को प्राप्त हुई, लगभग उसी प्रकार की मोहदशा एवं रुदन आदि की स्थिति तथागत के निर्वाण पर आनन्द की हुई। आनन्द ने जब तथागत का निर्वाण निकट आया सुना तो विहार में जाकर खूँटी पकड़ कर रोने लगे—“हाय ! मेरे शास्ता का परिनिर्वाण हो रहा है !” जब बुद्ध को भिक्षुओं से ज्ञात हुआ कि आनन्द रुदन कर रहा है तो उन्होंने बुला कर कहा—“आनन्द ! शोक मत करो ! रुदन मत करो ! सभी प्रियों का वियोग अवश्यभावी है। आनन्द ! तूने चिरकाल तक तथागत की सेवा की है, तू कृतपुण्य है। निर्वाण साधन में लग ! शीघ्र अनाश्रव हो !”

—दीर्घनिकाय (आगम और त्रिपिटक: एक अनुशीलन, पृ० ३८७)

११२. कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११४

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् संघ के नेता का प्रश्न आया । गणधर गौतम भगवान महावीर के संघ में सबसे ज्येष्ठ थे । ज्ञान एवं तपः साधना में भी अद्वितीय थे । वरीयता और ज्येष्ठता की दृष्टि से संघ का नेतृत्व गौतम के हाथों में आता, किंतु गौतम उसी रात्रि को सर्वज्ञ हो गए थे, अतः प्रश्न यह आया कि सर्वज्ञ की परम्परा चलाने के लिए, उनकी वाणी को उन्हीं के नाम से परम्परित करने के लिए सर्वज्ञ का उत्तराधिकारी छद्मस्थ होना चाहिए न कि सर्वज्ञ ! इस दृष्टि से भगवान महावीर के उत्तराधिकारी गणधर सुधर्मा हुए ।

गौतम केवल ज्ञान प्राप्त करके बारह वर्ष तक पृथ्वी पर विचरते रहे, उपदेश करते रहे । गौतम के द्वादशवर्षीय सर्वज्ञ जीवन का विशेष विवरण आज उपलब्ध नहीं हैं । केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि वे अन्तिम समय में राजगृह में एक मास का अनशन करके सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए ।

० . ०

## परिसंवाद [ प्रश्न एवं संवाद ]

दर्शन का मूल जिज्ञासा ●

गौतम की प्रश्न शैली ●

प्रश्नों का वर्गीकरण ●

### १—अध्यात्म विषयक प्रश्न

सामायिक में भांड अभांड ●

आत्मा का गुरुत्व लघुत्व ●

लघुता प्रशस्त है ? ●

कषाय का आधार क्या है ? ●

उपासना का फल ? ●

ज्ञान और क्रिया ? ●

शील और श्रुत ? ●

दीर्घायुष्य का कारण ? ●

दुःखी-सुखी क्यों ? ●

सिद्ध स्वरूप ? ●

श्रमण केशीकुमार और गौतम ●

उदक पेढाल पुत्र और गौतम ●

विकास और ह्रास का कारण ●

उत्थान और पतन का रहस्य ●

### २—कर्मफल विषयक प्रश्न

प्रदेशी राजा ●

मृगापुत्र ●

सुबाहु कुमार ●



### ३—लोक विषयक प्रश्न

- लोक एवं जीव ●
- परमाणु : शाश्वत अशाश्वत ●
- अस्तित्व-नास्तित्व ●
- देवासुर संग्राम ●
- देवासुर विरोध का कारण ●
- देवों के भेद ●
- क्या देवता अलोक में हाथ फैला सकता है ? ●
- गुड में कितने रस ? ●
- माता पिता के अंग ●

### ४—स्फुट विषयक प्रश्न

- उन्माद ●
- उपधि ●
- राजगृह क्या है ? ●
- लवण समुद्र का पानी ●
- मेघ स्त्री है या पानी ? ●
- घोड़े का शब्द ●
- जृम्भक देव ●
- तीर्थ और तीर्थंकर ●
- दर्शन कितने ? ●

## परिसंवाद

### दर्शन का मूल जिज्ञासा

गणधर गौतम की उदग्र जिज्ञासा वृत्ति का एक परिचय पिछले पृष्ठों पर दिया जा चुका है और उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन श्रुत साहित्य के निर्माण में अधिकांश एवं महत्वपूर्ण योग गौतम के इन्हीं प्रश्नों का है। हो सकता है उत्तरकाल में यह ग्रन्थ-प्रणयन की एक शैली बन गई हो, जिसके प्रारम्भ में गौतम की जिज्ञासा उपस्थित करके उस पर भगवान द्वारा उत्तर दिलाया जाय। पर किसी भी शैली का निर्माण तभी होता है जब उसकी परम्परा में कोई स्थायीप्रभाव एवं असामान्य आकर्षण रहा हो, नई शैली का जन्म अपने आप में किसी परम्परा एवं धारणा के आकर्षक प्रभाव का इतिहास होता है। गौतम के प्रश्न एवं उत्तर की शैली वस्तुतः एक रोचक एवं हृदयग्राही शैली रही है। आगमों के ऐतिहासिक अवलोकन से यह भी तो स्वतः सिद्ध है कि बहुत से संवाद गौतम और महावीर की जीवन घटनाओं के साथ जुड़े हैं, अतः उनकी ऐतिहासिकता में भी संशय नहीं किया जा सकता। फिर आगमों में गौतम की मनःस्थिति को जताने वाली एक शब्दावली बार-बार आती है—“जाय सङ्गे, जायसंसए, जायकोउहहले।”<sup>१</sup> गौतम के मन में अमुक तथ्य को

१. (क) भगवती १।१
- (ख) औपपातिक
- (ग) उवासग दशा १
- (घ) विपाक १ आदि

जानने की श्रद्धा—इच्छा पैदा हुई, संशय हुआ, कौतुहल हुआ, और वे उस ओर आगे बढ़े। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि गौतम की वृत्ति में मूलघटक वे ही तत्व थे जो संपूर्ण दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति की कहानी के मूल घटक रहे हैं।

दर्शन शास्त्र के इतिहास में तीन दर्शन मुख्य माने गये हैं। यूनानी दर्शन, पश्चिमी दर्शन एवं भारतीय दर्शन। यूनानी दर्शन का प्रवर्तक ओरिस्टोटल माना जाता है, उसका कथन है—‘दर्शन का जन्म आश्चर्य से हुआ।’<sup>१</sup> इसी बात को प्लेटो ने उद्धृत किया है। पश्चिम के प्रमुख दार्शनिक डेकार्ट, कांट, हेगल आदि ने दर्शन शास्त्र का उद्भावक तत्व ‘संशय’ माना है।<sup>२</sup> भारतीय दर्शन का जन्म ‘जिज्ञासा’ से हुआ यह अनेक दर्शनों के प्रथम दर्शन सूत्रों से ही स्पष्ट हो जाता है।<sup>३</sup> उपनिषदों में तो इस प्रकार की अनेक कथाएँ संग्रहित हैं जिनके मूल में यही जिज्ञासा तत्व मुखरित हो रहा है। नारद सनत्कुमार के पास आकर यही प्रार्थना करते हैं—“अधीहि भगवन्!”<sup>४</sup> मुझे सिखाइये, आत्मा क्या है यह बताइए। कठोपनिषद् का यम एवं नचिकेता का संवाद तो दर्शन शास्त्र का महत्वपूर्ण संवाद माना जाता है। बालक नचिकेता यम के द्वार पर पहुँच कर जब कहता है—“जिसके विषय में सब मनुष्य विचिकित्सा कर रहे हैं वह तत्व क्या है? मुझे बताइये?” यम उसे ऐश्वर्य सुख, भोग का प्रलोभन देकर इस प्रश्न को टालना चाहता है, पर अटल जिज्ञासु बालक नचिकेता दृढ़ता के साथ कहता है—“मुझे यह धन वैभव कुछ नहीं चाहिए, मुझे तो मेरे प्रश्न का समाधान (वर जो मांगा है) चाहिए, बस मुझे यही यथेष्ट है।”<sup>५</sup>

दर्शन शास्त्र के इतिहास के लेखकों ने अर्हत् महावीर एवं तथागत बुद्ध की प्रव्रज्या एवं कठोर साधना का मूल भी इसी आत्मजिज्ञासा में देखा है। के अहमंसि ?

२. फिलॉसफी बिगिंस इन वंडर (Philosophy begins in wander)
३. दर्शन का प्रयोजन पृष्ठ २९ (डा० भगवानदास)
४. (क) अथातो धर्मजिज्ञासा—वैशेषिक दर्शन ?  
(ख) दुःख त्रयाभिघाताज् जिज्ञासा—सांख्यकारिका ? (ईश्वरकृष्ण)  
(ग) अथातो धर्म जिज्ञासा—मीसांसा सूत्र ? (जैमिनी)  
(घ) अथातो ब्रह्म जिज्ञासा—ब्रह्मसूत्र १।१
५. छांदोग्य उपनिषद् अ० ७
६. वरस्तु मे वरणीय एव—कठोपनिषद्।

के वा इओ चोओ इह पेच्चा भविस्सामि ?<sup>७</sup> मैं कौन था, मेरा क्या स्वरूप है, यहाँ से भागे कहाँ जाऊँगा—ये विकट प्रश्न साधक को आत्मशोध की ओर उन्मुख करते हैं और जब तक वह इनका समाधान नहीं पा लेता, तब तक उसे चैन नहीं पड़ता। तथागत बुद्ध तो स्पष्ट प्रतिज्ञा करते हैं कि “जब तक मैं जन्म मरण के किनारे का पता नहीं पा लूँगा तब तक कपिलवस्तु में प्रवेश नहीं करूँगा।”

इस प्रकार आश्चर्य; जिज्ञासा; संशय, कुतूहल ये सब मनुष्य को दर्शन की ओर उन्मुख करते रहे हैं। ठेठ वैदिक काल<sup>८</sup> से लेकर पश्चिमो दर्शन के उद्भव तक यही ‘इंटेलेक्चुअल क्युरियसिटी’ (Intellectual curiosity) ‘बौद्धिक कौतुहल’ मनुष्य को ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में निरंतर आगे से आगे बढ़ाता आया है।

### गौतम की प्रश्न शैली



गणधर गौतम के मन में ‘बौद्धिक कुतूहल’ बहुत उत्कट रूप में प्रदर्शित होता है, वह सिर्फ आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध में ही नहीं, किन्तु दृश्य जगत् के प्रत्येक पदार्थ के सम्बन्ध में सचेतन है, कोई भी घटना, विषय या प्रसंग जब उनके सामने आता है तो वे उस विषय में जानने की इच्छा करते हैं, उसके विविध पक्षों पर संशयात्मक चिंतन, अवलोकन करते हैं, उसको विविधता एवं विचित्रता के संबंध में मन में कुतूहल होता है और उस ‘श्रद्धा’ संशय एवं कुतूहल से प्रेरित होकर अपने धर्मोपदेष्टा प्रभु के चरणों में उपस्थित होकर विनय पूर्वक प्रश्न करते हैं।

गौतम के प्रश्नोत्थान की शैली भी बड़ी सुन्दर एवं विनयपूर्ण है। उनके मन में जब कोई संशय या जिज्ञासा उपस्थित होती है तो वे चलकर जहाँ भगवान

७. आचारांग १।१।१।१

८. जनन-मरणयोरदृष्टपारः न पुनरहं कपिलाह्वयं प्रवेष्टा।

—बुद्धचरित (अश्वघोष)

९. ऋग्वेद कालीन ऋषि रात्रि में तारों को देखकर कहता है—ये तारे रात्रि में दीख पड़ते हैं, वे दिन में कहाँ चले जाते हैं, यह मेरी समझ के परे है (ऋग्वेद मं १ सू० २२) इस जगत् का आरम्भ किसने किया ? वह कौन था ? कैसा था ? आदि प्रश्न भी उसे विकल करते प्रतीत होते हैं (यजुर्वेद अ० २३) देखे दर्शन का प्रयोजनः पृष्ठ २६

महावीर विराजमान हैं वहाँ आते हैं, उन्हें विनयपूर्वक वन्दन करते हैं, प्रभु के ज्ञान की स्तुति करते हैं और फिर अपनी शंका प्रस्तुत करते हुए पूछते हैं—“कहमेयं भन्ते—कथमेत् भदन्त—भगवन ! यह बात कैसे हैं ? कभी-कभी वे उत्तर की गहराई में जाकर पुनः प्रति प्रश्न भी करते हैं—केणद्वेणं भन्ते ! ऐसा किस लिए कहा जाता है ? वे हेतु तक जाकर तर्क शैली से उसका समाधान पाना चाहते हैं ।”

गौतम के प्रश्न की यह शैली तर्क पूर्ण एवं वैज्ञानिक प्रतीत होती है । विज्ञान भी ‘कथम्’—हाउ (How) और ‘कस्मात्’ ‘केन’—ह्वाई (क्यों, किस कारण) (Why) इन्हीं दो तर्कसूत्रों को पकड़ कर वस्तुस्थिति की गहराई में उतरता है, और अन्वीक्षण-परीक्षण करके रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करता है । गौतम भी प्रायः इन्हीं दो सूत्रों के आधार पर अपनी जिज्ञासाओं को प्रस्तुत करते हैं ।

गौतम की जिज्ञासा में एक विशेषता और है । वे केवल प्रश्न के लिए प्रश्न नहीं करते हैं, किन्तु समाधान के लिए प्रश्न करते हैं । उनकी जिज्ञासा में सत्य की बुभुक्षा है, उनके संशय में समाधान की गूँज है, उनके कौतुहल में विश्व वैचित्र्य को समझने की तड़फ है ।

सत्योन्मुखता उनके प्रत्येक शब्द से जैसे टपकती है । यही कारण है कि भगवान महावीर अपना अमूल्य समय देकर भी गौतम के प्रश्नों का समाधान करते हैं । और गौतम भी अपनी जिज्ञासा का समाधान पाकर कृत-कृत्य होकर भगवान के चरणों में पुनः विनयपूर्वक कह उठते हैं—‘सेवं भन्ते ! सेवं भन्ते ! तहमेयं भन्ते ! प्रभु ! जैसा आपने कहा, वह ठीक है, वह सत्य है, मैं उस पर श्रद्धा एवं विश्वास करता हूँ ।” प्रभु के उत्तर पर श्रद्धा की यह अनुगूँज वास्तव में ही प्रश्नोत्तर की एक आदर्श पद्धति है । इससे न केवल प्रश्नकर्ता के समाधान की स्वीकृति होती है, किन्तु उत्तरदाता के प्रति कृतज्ञता एवं श्रद्धा का भाव भी व्यक्त होता है, जो कि अत्यन्त आवश्यक है ।

### प्रश्नों का वर्गीकरण

गौतम के प्रश्न, चर्चा एवं संवादों का विवरण इतना विस्तृत है कि उसका वर्गीकरण करना बहुत ही कठिन है । भगवती, औपपातिक, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति,

१०. गौतम का कौतुहल कभी-कभी उसी रूप में व्यक्त होता है जैसा पूर्वोक्त ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के ऋषियों के मन में उठता है ।

विपाक, रायपसेणी आदि आगमों में इतने विविध विषयक प्रश्न हैं कि उनकी विस्तृत सूची तैयार की जाये तो संभवतः एक स्वतंत्र ग्रन्थ का निर्माण हो जाये। मेरे मन में यह भी परिकल्पना है कि आगमों में जहाँ जहाँ भी गौतम के नाम से प्रश्नोत्तर आये हैं उनकी एक सूची और साथ ही ससंदर्भ एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार किया जाये। इस लघु पुस्तक में यह संभव नहीं है। फिर भी संक्षेप में गौतम के प्रश्नों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१. अध्यात्म विषयक
२. कर्म-फल विषयक
३. लोक विषयक
४. स्फुट विषयक

प्रथम वर्ग में वे प्रश्न गिने जा सकते हैं जिनमें गौतम ने भगवान से आत्मा<sup>११</sup> उसकी स्थिति, शाश्वत-अशाश्वत<sup>१२</sup> जीव, सामायिक<sup>१३</sup> कर्म, कषाय,<sup>१४</sup> लेश्या<sup>१५</sup> ज्ञान का फल<sup>१६</sup>, मोक्ष, सिद्ध स्वरूप<sup>१७</sup> आदि विषयों पर प्रश्न किये हैं। इनमें वे संवाद भी सम्मिलित किये जा सकते हैं जो गौतम ने अपने अन्य विशिष्ट जिज्ञासुओं एवं साधकों के साथ किये हैं, जैसे उदक पेढाल<sup>१८</sup>, केशीकुमार श्रमण<sup>१९</sup> आदि।

द्वितीय वर्ग में उन प्रश्नों का समावेश किया जा सकता है, जो किसी व्यक्ति विशेष को सुखी देखकर उसके पूर्व जन्मोपाजित शुभ कार्यों के विषय में पूछना। जैसे— सुबाहु कुमार, मृगापुत्र<sup>२०</sup> आदि। तथा किसी को ऋद्धि समृद्धि देखकर उसके पूर्व जीवन के विषय में पूछना, जैसे—सूर्याभिदेव के पूर्व जीव प्रदेशी राजा का वर्णन।<sup>२१</sup>

- 
११. ज्ञाता सूत्र
  १२. भगवती
  १३. भगवती
  १४. प्रज्ञापना
  १५. प्रज्ञापना
  १६. भगवती
  १७. औपपातिक (सिद्ध वर्णन)
  १८. सूत्र कृतांग
  १९. उत्तराध्ययन
  २०. विपाक सूत्र
  २१. रायपसेणी सूत्र

तृतीय वर्ग में बहुत से प्रश्न आ सकते हैं, जैसे—भगवती के लोक स्थिति परमाणु, देव-नरक पृथ्वीकाय, वनस्पतिकाय, आदि, प्रजापना के जीव, अजीव, भाषा, शरीर विषयों के एवं जंबूद्वीप प्रजप्ति के जंबूद्वीप विषयक, सूर्य प्रजप्ति चंद्र प्रजप्ति में सूर्य चन्द्र की गतिविषयक प्रश्न। इन प्रश्नों का विस्तार काफी किया जा सकता है।

चौथे वर्ग में अन्य स्फुट प्रश्नों का समावेश हो जाता है, जो समय-समय पर किसी अन्यतीर्थिक के प्रश्न पर, विलक्षण घटना के देखने पर या वैसे ही सहजतया गौतम के मन में उठे हैं और भगवान ने जिनका समाधान दिया है।

हम अधिक विस्तार में न जाकर क्रमशः चारों वर्गों से संबंधित कुछ प्रश्न यहाँ आगमों के हिन्दी भावानुवाद के साथ प्रस्तुत करते हैं।

० ०

## सामायिक में भांड-अभांड

भगवान महावीर एक बार राजगृह में पधारे । वहाँ गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—“भन्ते ! सामायिक व्रत अंगीकार करके बैठे हुए श्रावक के भंडोपकरण कोई पुरुष ले जावे और फिर सामायिक पूर्ण होने पर वह श्रावक उन भंडोपकरण की खोज करे तो क्या वह अपने भंडोपकरण की खोज करता है या दूसरे के भंडोपकरण की ?

भगवान—गौतम ! वह अपने भंडोपकरण की ही खोज करता है, अन्य के भंडोपकरण की नहीं ?

गौतम—भन्ते ! शीलव्रत, गुणव्रत आदि प्रत्याख्यान एवं पौषधोपवास में श्रावक के भांड क्या अभांड (स्वामित्वमुक्त) नहीं होते ?

भगवान—गौतम ! वह अभांड हो जाते हैं ।

गौतम—भन्ते ! फिर ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि वह अपना भांड खोजता है, अन्य का नहीं ।

भगवान—गौतम ! सामायिक करनेवाले श्रावक के मन में यह भावना होती है कि—यह स्वर्ण, हिरण्य, वस्त्र आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं, (उनके साथ ममत्व भाव नहीं रखता) किन्तु सामायिक व्रत पूर्ण होने के बाद वह ममत्व भाव से युक्त हो जाता है,



इसलिए गौतम ! कहा जाता है कि वह स्वकीय भांड की अनुगवेपणा करता है, परकीय भांड की नहीं।<sup>२२</sup>

### आत्मा का गुस्त्व लघुत्व



गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—भन्ते ! यह जीव-आत्मा (अरूपी होने के कारण) भारीपन-गुस्त्व कैसे प्राप्त करता है ?

भगवान—गौतम ! प्राणातिपात मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य आदि के सेवन से आत्मा गुस्त्व प्राप्त करता है ।

गौतम—भन्ते ! यह आत्मा लघुत्व कैसे प्राप्त करता है ?

भगवान—गौतम ! प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का निरोध करने से आत्मा लघुत्व प्राप्त करता है । इसी प्रकार प्राणातिपातादि के सेवन से जीव संसार दीर्घ करता है, और उनके त्याग से संसार को कम करता है ।<sup>२३</sup>

### लघुता प्रशस्त है



गौतम स्वामी ने पूछा—भन्ते ! श्रमण निग्रन्थों के लिए क्या लघुता, अल्पेच्छा, अममत्व, अनासक्ति एवं अप्रतिबद्धता प्रशस्त हैं ?

भगवान ने कहा—गौतम ! ये श्रमण निग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं<sup>२४</sup> (इन गुणों को अपनाना चाहिए) ।

### कषाय का आधार क्या है ?



एकबार गौतमस्वामी ने भगवान से पूछा—“भन्ते ! कषाय कितने प्रकार के हैं ?”

२२. भगवती सूत्र शतक ८।५

२३. भगवती शतक १।९

२४. भगवती शतक १।९

भगवान ने कहा—“गौतम ! कषाय चार प्रकार के हैं । क्रोध, मान, माया और लोभ ।”

गौतम—“भन्ते ! क्रोध आदि कषायों की प्रतिष्ठा (आधार भूमि) क्या है ?”

भगवान—“गौतम ! कषाय आत्म-प्रतिष्ठित (स्व-आधार से) पर-प्रतिष्ठित, तदुभय प्रतिष्ठित एवं अप्रतिष्ठित (बिना किसी कारण के) यों चार प्रकार से कषाय की प्रतिष्ठा (आधार—कारण भूमि) है ।”

गौतम—“भन्ते ! क्रोध आदि की उत्पत्ति के कितने कारण हैं ?”

भगवान—“गौतम ! चार प्रकार से क्रोध आदि की उत्पत्ति होती है । क्षेत्र से, वस्तु से, शरीर से एवं उपधि से ।”<sup>२५</sup>

## उपासना का फल

एकबार भगवान महावीर कौशाम्बी से विहार करके राजगृह पधारे । गौतम स्वामी नगर में भिक्षा के लिये गए तो वहाँ उन्होंने एक चर्चा सुनी—तुंगिका नगरी के बाहर उद्यान में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य—स्थविर आये हैं । उनसे श्रावकों ने पूछा—संयम का फल क्या है ? तप का फल क्या है ? इस पर स्थविरों ने उत्तर दिया—संयम का फल है आश्रव रहित होता और तप का फल है कर्म का नाश ।

इस उत्तर पर कुछ गृहस्थों ने कहा—“संयम से देवलोक की प्राप्ति होती है, इसका तात्पर्य क्या है ?”

स्थविरों ने उत्तर दिया—“सराग अवस्था में पाले गये संयम एवं सराग अवस्था में आचरित संयम में अन्तर की आसक्ति के कारण वह मोक्ष के बदले देवत्व को प्राप्त करता है ।”

इस प्रकार प्रश्नोत्तरों से गौतम स्वामी को बड़ा आश्चर्य हुआ । वे भगवान महावीर के समीप आकर पूछने लगे—“भन्ते ! उन पार्श्वपत्य श्रमणों का यह उत्तर

क्या सत्य है ? वे इस प्रकार का यथार्थ उत्तर देने में समर्थ हैं ? क्या वे विशेष ज्ञानी हैं ?”

भगवान ने कहा—“गौतम ! उन स्थविर श्रमणों ने यथार्थ बात कही है । उन्होंने अपनी बड़ाई के लिये नहीं, किन्तु सत्य तथ्य की दृष्टि से यह बात कही है, मैं भी यही बात कहता हूँ ।”

गौतम ने पूछा—“भन्ते ! तथा प्रकार के श्रमण ब्राह्मणों की पर्युपासना-सेवा करने से मनुष्य को क्या फल मिलता है ?”

भगवान—सेवा से सद्शास्त्र का श्रवण मिलता है ।

गौतम—शास्त्र श्रवण का क्या फल है ?

भगवान—ज्ञान ! (ज्ञेय उपदेश का बोध)

गौतम—ज्ञान का फल ?

भगवान—विज्ञान ! (आत्म बोध)

गौतम—विज्ञान का फल ?

भगवान—प्रत्याख्यान । (पाप-परिहार)

गौतम—प्रत्याख्यान का फल ?

भगवान—प्रत्याख्यान का फल है संयम ।

गौतम—संयम का फल ?

भगवान—आश्रव निरोध । (अनाश्रव)

गौतम—अनाश्रव का फल ?

भगवान—तप ।

गौतम—तप का फल ?

भगवान—कर्म मल की शुद्धि ।

गौतम—शुद्धि का फल ?

भगवान—सर्व क्रियाओं से मुक्ति । (निष्क्रियता)

गौतम—निष्क्रियता का फल ?

भगवान—निष्क्रियता प्राप्त होने पर आत्मा को सिद्धि लाभ प्राप्त हो जाता है ।<sup>१६</sup>

### ज्ञान और क्रिया

गौतमस्वामी ने पूछा—“भगवन् ! कोई मनुष्य ऐसा व्रत लेता है कि मैं आज से सर्व प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्वों की हिंसा का त्याग करता हूँ, तो उसका वह व्रत ‘सुव्रत’ कहलायेगा या ‘दुव्रत’ ?

भगवान ने कहा—“गौतम ! वह व्रत ‘सुव्रत’ भी हो सकता है और ‘दुव्रत’ भी ।”

गौतम—“भगवन् ! इसका क्या कारण है ?”

भगवान—“गौतम ! उक्त प्रकार का व्रत लेने वाला व्यक्ति जीव, अजीव, त्रस-स्थावर के परिज्ञान से रहित है, तो उसका व्रत, सुव्रत नहीं, किन्तु ‘दुव्रत’ कहलायेगा । जीव-अजीव के ज्ञान से रहित व्यक्ति यदि कहे कि मैं हिंसा का त्याग करता हूँ तो उसकी वह भाषा मिथ्या भाषा है, वह असत्यभाषी पुरुष मन-वचन कर्मणा स्वयं हिंसा करना, करवाना और उसका अनुमोदन करना इन तीनों प्रकार के संयम से रहित है, विरति से रहित है और एकांत हिंसा करने वाला अज्ञानी है ।”

जिस पुरुष को जीव अजीव का ज्ञान है, वह यदि हिंसा न करने का व्रत लेता है तो उसका व्रत ‘सुव्रत’ है । वह सर्व प्राण-भूत-सत्त्वों के प्रति संयत है, विरत है, संवर युक्त एकांत अहिंसक तथा ज्ञानी है ।<sup>१७</sup>

### शील और श्रुत

गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—“कई इतर दर्शन वाले कहते हैं, शील (आचार) ही श्रेय है, दूसरे कई कहते हैं—श्रुत (ज्ञान) श्रेय है, और एक तीसरे

२६. सवणे नाणे विन्नाणे पच्चक्खारे य संजमे ।

अण्हवे तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धि ॥

—भगवती श० २:३।५

२७. भगवती श० ७।३२

प्रकार के व्यक्ति कहते हैं—अन्योन्य निरपेक्ष शील और श्रुत श्रेय हैं— भगवन् ! इनमें किसका कथन योग्य है ?

भगवान्—गौतम ! उन सभी का कथन मिथ्या है । (ऐकांतिक होने से) संसार में चार प्रकार के पुरुष हैं—

१. शील संपन्न है, किन्तु श्रुत संपन्न नहीं,
२. श्रुत संपन्न है, किन्तु शील संपन्न नहीं,
३. शील संपन्न भी है और श्रुत संपन्न भी,
४. शील संपन्न भी नहीं और श्रुत संपन्न भी नहीं ।

प्रथम कोटि का पुरुष पाप से उपरत है, किन्तु ज्ञान से रहित है, वह अंशतः धर्म का आराधक है ।

दूसरी कोटि का पुरुष—पाप से निवृत्त नहीं है, किन्तु ज्ञानवान् है, वह अंशतः धर्म का विराधक है ।

तीसरी कोटि का पुरुष—पाप से निवृत्त भी है और ज्ञानी भी है, वह सम्पूर्ण रूप से धर्म का आराधक है ।

चौथी कोटि का पुरुष—पाप से निवृत्त भी नहीं है और धर्म ज्ञान से रहित भी है, वह पुरुष सम्पूर्ण रूप से धर्म का विराधक है ।<sup>१८</sup>

### दीर्घायुष्य का कारण

गौतम ने पूछा—“भगवन् ! जीव किस कारण से अल्पकालिक आयुष्य बांधता है?

भगवान्—“गौतम ! तीन कारण से—हिंसा करने से, असत्य वचन बोलने से, श्रमण ब्राह्मण को सदोष आहार पानी देने से ।”

गौतम—“भगवन् ! जीव किस कारण से दीर्घायुष्य बांधने के निमित्त भूत कर्म बांधता है ?”

भगवान्—गौतम ! तीन कारण से ! अहिंसा की साधना से, सत्य भाषण से, श्रमण-ब्राह्मण को निर्दोष शुद्ध आहार पानी देने से ।<sup>२९</sup>

**दुःखी-सुखी क्यों ?**



गौतम ने पूछा—भगवन् ! जीव दीर्घकाल तक दुःख पूर्वक जीने के निमित्त कर्म क्यों, व किस कारण करता है ?

भगवन्—गौतम । हिंसा करने से, असत्य बोलने से तथा श्रमण-ब्राह्मणों की हीलना, निंदा, अपमान आदि करके अमनोज्ञ आहार पानी देने से जीव दुःखपूर्वक जीने योग्य अशुभ कर्म का बंधन करता है ।”

गौतम—भगवन् ! जीव सुखपूर्वक दीर्घकाल तक जीने योग्य कर्म किस कारण से बांधता है ?

भगवन्—गौतम ! हिंसा-निवृत्ति से, असत्य निवृत्ति से तथा श्रमण-ब्राह्मणों की वंदना उपासना करके प्रियकारी आहार पानी का दान करने से जीव शुभ दीर्घायुष्य का बंध करता है ।”<sup>३०</sup>

**सिद्ध स्वरूप**



गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! सिद्ध भगवान को सादि (आदि सहित) अपर्यवसित (अंत रहित-पुनर्जन्म से मुक्त) किसलिए और क्यों कहा जाता है ?

भगवान्—गौतम ! जिस प्रकार अग्नि से जला देने पर बीज की प्रजनन शक्ति नष्ट हो जाती है, वह पुनः अंकुर रूप में उत्पन्न नहीं हो सकता । इसीप्रकार सिद्ध भगवान ने कर्म रूप बीजों को दग्ध कर डाला है, अतः जन्म के नये अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकते, इसकारण सिद्ध भगवान को सादि अपर्यवसित कहा जाता है ।

२९. भगवती, श० ५ । उ० ६

३०. भगवती, श० ५ । उ० ६

गौतम—भगवन् ! सिद्ध कहाँ जाके रुक जाते हैं, कहाँ जाके ठहरते हैं, शरीर कहाँ छोड़ते हैं, और कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ?

भगवन्—“गौतम ! अलोक के कारण सिद्धों की गति रुक जाती है, लोकाग्र भाग पर ठहरते हैं, यहाँ (संसार में) शरीर को छोड़कर वहाँ, (सिद्धशिला) पर जाकर सिद्ध होते हैं ?”<sup>३१</sup>

### श्रमण केशीकुमार और गौतम



एकबार मिथिला से विहार करके भगवान महावीर हस्तिनापुर की ओर पधारे । गणधर गौतम अपने शिष्य समुदाय के साथ श्रावस्ती पधारे, और निकटवर्ती कोष्ठक उद्यान में ठहरे । उसी नगर के बाहर एक ओर तिन्दुक उद्यान था, जिसमें पार्श्वसंतानीय निग्रन्थ श्रमण केशीकुमार अपने शिष्य समुदाय के साथ आकर ठहरे हुए थे ।

श्रमण केशी कुमार कुमारावस्था में ही प्रव्रजित हो गये थे । वे ज्ञान व चारित्र के पारगामी तथा मति, श्रुत व अवधि—तीन ज्ञान से युक्त पदार्थों के स्वरूप के ज्ञाता थे ।<sup>३२</sup>

उस समय गौतम व केशी कुमार के शिष्यों ने एक दूसरे को देखा, तब दोनों के शिष्य समुदाय में कुछ शंकाएँ उत्पन्न हुईं—“हमारा धर्म कैसा और इनका धर्म कैसा ? हमारी आचार-धर्म-प्रणिधि कैसी और इनकी कैसी ? महामुनि पार्श्वनाथ ने चतुर्याम धर्म का उपदेश किया है और तीर्थंकर वर्धमान पाँच शिक्षारूप धर्म का

३१. औपपातिक ३ (सिद्ध वर्णन)

३२. श्रमण केशीकुमार के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ यह मत भेद है, कि ये केशी कुमार वे नहीं हैं जिन्होंने प्रदेशी राजा को प्रतिबोध दिया था, चूँकि राय पसेणिय में उनके सम्बन्ध में कहा है—चउनाणोवगए—वे चारज्ञान के धारक थे, जबकि इन केशीकुमार के लिए-ओहिनाण सुए (उत० २३ । २) श्रुतज्ञान एवं अवधि ज्ञान से युक्त विशेषण आया है ।

विशेष वर्णन के लिए देखें—भगवान पार्श्वः एक अनुशीलन (देवेन्द्रमुनि) उत्तराध्ययनः एक समीक्षात्मक अध्ययन (मुनि नथमल जी)  
पृ० ४००

उपदेश करते हैं। जब दोनों का लक्ष्य समान है तो, एक लक्ष्य वालों में यह भेद कैसा ? एक ने सचेलक धर्म का उपदेश दिया है और एक अचेलक भाव का उपदेश करते हैं।” अपने शिष्यों की आशंकाओं से प्रेरित होकर दोनों गौतम व केशीकुमार ने परस्पर मिलने का विचार किया। गौतम अपने शिष्य वर्ग के साथ तिनदुक उद्यान में आए, जहाँ कि श्रमण केशीकुमार ठहरे हुए थे। गणधर गौतम को अपने यहाँ आते हुए देखकर श्रमण केशीकुमार ने भक्ति-बहुमानपूर्वक उनका स्वागत किया। अपने द्वारा याचित पलाल, कुश, तृण आदि के आसन गौतम के सम्मुख प्रस्तुत किये। दोनों का मिलन देखने को अनेक कौतुहल प्रिय व्यक्ति भी उद्यान में उपस्थित हो गए थे।

गौतम से अनुमति पाकर केशी कुमार ने चर्चा को आरम्भ किया—“महाभाग ! वर्धमान स्वामी ने पाँच शिक्षा रूप धर्म का उपदेश किया है, जब कि महामुनि पार्श्वनाथ ने चतुर्धर्म का प्रतिपादन किया है। मेधाविन ! एक कार्य में प्रवृत्त होने वाले साधकों के धर्म में विशेष भेद होने का क्या कारण है ? धर्म में अन्तर हो जाने पर क्या आपको संशय नहीं होता ?”

गौतम ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया—“जिस धर्म में जीवादि तत्त्वों का निश्चय किया जाता है, उसके तत्त्व को प्रज्ञा ही देख सकती है। काल-स्वभाव से प्रथम तीर्थंकर के मुनि ऋजु जड़ और चरमतीर्थंकर के मुनि वक्रजड़ होते हैं, किन्तु मध्य-वर्ती तीर्थंकरों के मुनि ऋजुप्राज्ञ हैं। यही कारण है कि धर्म के दो भेद कहे गए हैं। प्रथम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प दुर्विशोध्य और चरम तीर्थंकर के मुनियों का कल्प दुरनुपाल्य होता है, पर मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों का कल्प सुविशोध्य और सुपाल्य होता है।”

गौतम के उत्तर से श्रमण केशीकुमार को संतोष हुआ। वे बोले—“आयुष्मन् ! आपने मेरे एक प्रश्न का समाधान तो कर दिया, अब दूसरी जिज्ञासा को भी समाहित करें। वर्धमान स्वामी ने अचेलक धर्म का उपदेश दिया है और महामुनि पार्श्वनाथ ने सचेलक धर्म का, एक ही कार्य में प्रवृत्त होने वालों में यह अन्तर क्यों ? इसमें विशेष हेतु क्या है ? लिंग—वेष में इस प्रकार अन्तर हो जाने पर क्या आपके मन में विप्रत्यय उत्पन्न नहीं होता ?”

गौतम ने धैर्य पूर्वक सुना और बोले—“भगवन् ! लोक में प्रत्यय के लिये, वर्षादि ऋतुओं में संयम की रक्षा के लिए, संयम यात्रा के निर्वाह के लिए,



ज्ञानादि ग्रहण के लिए अथवा 'यह साधु है' इस पहचान के लिए जगत में लिंग (चिन्ह) का प्रयोजन है। वस्तुतः दोनों ही तीर्थकरों का सिद्धान्त यही है कि निश्चय में मोक्ष के सद्भूत साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ही हैं।”

केशीकुमार—“महाभाग ! आप अनेक सहस्र शत्रुओं के बीच खड़े हैं। वे शत्रु आपको जीतने के लिए आपकी ओर आ रहे हैं। आपने उन शत्रुओं को किस प्रकार जीता ?”

गौतम—“जब मैंने एक शत्रु को जीत लिया, तो पाँच शत्रु जीत लिये गये। पाँच शत्रुओं के जीते जाने पर दस ! इसी प्रकार मैंने सहस्रों शत्रुओं को जीत लिया।”

केशीकुमार—“वे शत्रु कौन हैं ?”

गौतम—“महामुने ! बहिर् भाव में लीन आत्मा, चार कषाय व पाँच इन्द्रियाँ शत्रु हैं। उन्हें जीत कर मैं कुशल पूर्वक विचरता हूँ।”

श्रमण केशीकुमार बोले—“मुने ! संसार में अनेक जीव पाश-बद्ध देखे जाते हैं, किन्तु आप पाश-मुक्त और लघुभूत होकर कैसे विचरते हैं ?”

गौतम—“मुने ! मैंने उन पाशों का सब तरह से छेदन कर डाला है, अब उन्हें विनष्ट कर मुक्त-पाश और लघुभूत होकर विचरता हूँ।”

केशीकुमार—“भन्ते ! वे पाश कौन से हैं ?”

गौतम—भगवन् ! राग-द्वेष और स्नेहरूप तीव्र पाश हैं, जो बड़े भयंकर हैं। मैं इनका छेदन कर कुशलपूर्वक विचरता हूँ।”

केशीकुमार—“गौतम ! अन्तःकरण की गहराई से समुद्र भूत लता, जिसका फल-परिणाम अत्यन्त विषमय है, उस लता को आपने किस प्रकार उखाड़ डाला ?

गौतम—“मैंने उस लता को जड़मूल से उखाड़ कर छिन्न भिन्न कर फैंक दिया है, अतः मैं उन विषमय फलों के भक्षण से सर्वथा मुक्त हो गया हूँ।”

केशीकुमार—“महाभाग ! वह लता कौन-सी है ?”

गौतम—महामुने ! संसार में तृष्णा रूप लता बहुत भयंकर है और दारुण फल देने वाली है । उसका विधि पूर्वक उच्छेद कर मैं विचरता हूँ ।

केशीकुमार—“मेधाविन् ! इस देह में घोर तथा प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो रही है । वह सम्पूर्ण शरीर को भस्मसात् करनेवाली है । आपने उसे कैसे शान्त किया, कैसे बुझाया ?”

गौतम—“तपस्विन् ! महामेघ से प्रसूत पवित्र जल को ग्रहण कर मैं उस अग्नि को बुझाता रहता हूँ, अतः वह जल-सिक्त अग्नि मुझे नहीं जलाती ।”

केशीकुमार—“महाभाग ! वह अग्नि क्या है और जल कौनसा है ?”

गौतम—“श्रीमन् ! कषाय अग्नि है । श्रुतशील और तप जल है । श्रुत-जलधारा से अभिसिंचित वह अग्नि मुझे नहीं जलाती है ।”

केशीकुमार—“तपस्विन् ! यह साहसिक, भीम, दुष्ट, अश्व चारों ओर भाग रहा है । उस पर चढ़े हुए आप भी उसके द्वारा उन्मार्ग में कैसे नहीं ले जाए गये ?”

गौतम—“महामुने ! भागते हुए अश्व को मैं श्रुतरूप-रस्सी से (लगाम) बाँध कर रखता हूँ, अतः वह उन्मार्ग में नहीं जा पाता, सदा सन्मार्ग में ही प्रवृत्त रहता है ।”

केशीकुमार—“यशस्विन् ! आप अश्व किसको कहते हैं ।”

गौतम—“व्रतिवर ! मन ही दुःसाहसिक व भीम अश्व है । वही चारों ओर भगता है । मैं कन्थक अश्व की तरह धर्म-शिक्षा के द्वारा उसका निग्रह करता हूँ ।”

केशीकुमार—“मुनिप्रवर ! संसार में ऐसे बहुत से कुमार्ग हैं, जिन पर चलने से जीव सन्मार्ग से च्युत हो जाता है । किन्तु आप सन्मार्ग में चलते हुए उनसे विचलित कैसे नहीं होते हैं ?”

गौतम—“आयुष्मन् ! जो सन्मार्ग में गमन करने वाले हैं व उन्मार्ग में प्रस्थान करने वाले हैं, मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ, अतः मैं अपने सन्मार्ग से हटता नहीं हूँ ।”

केशीकुमार—“विज्ञवर ! वह सन्मार्ग और उन्मार्ग कौन सा है ?”

गौतम—“मतिमन् ! कुप्रवचन को माननेवाले सभी पाखण्डी उन्मार्ग में चलने वाले हैं । जिन भाषित मार्ग ही सन्मार्ग है । और यह मार्ग निश्चित ही उत्तम निराबाध है ।”

केशीकुमार—“ऋषिवर ! महान् उदक के वेग में बहते हुए प्राणियों के लिए शरण और प्रतिष्ठारूप द्वीप आप किसे कहते हैं ?”

गौतम—श्रीमन् ! एक महाद्वीप है । वह बहुत विस्तृत है । जल के महान वेग की वहाँ गति नहीं है ।”

केशीकुमार—प्राज्ञवर ! वह महाद्वीप कौनसा है ?

गौतम—जरा-मरण के वेग से डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्मद्वीप है, प्रतिष्ठारूप है और उत्तम शरण रूप है ।

केशीकुमार—“महाप्रवाह वाले समुद्र में एक नौका विपरीत दिशा में तीव्रगति से भाग रही है । आप उसमें आरूढ़ हो रहे हैं । फिर पार कैसे जा सकेंगे ?”

गौतम—“जो सच्छिद्र नौका है, वह पारगामी नहीं हो सकती, किन्तु छिद्र रहित नौका अवश्य ही पार पहुँचाने में समर्थ होती है ।”

केशीकुमार—‘वह नौका कौनसी है ?’

गौतम—‘शरीर नौका है । आत्मा नाविक है । संसार समुद्र है, जिसे महर्षिजन सहज ही तैर कर पार पहुँचते हैं ।’

केशीकुमार—‘बहुत सारे प्राणी घोर अन्धकार में पड़े हैं । इन प्राणियों के लिए लोक में उद्योत कौन करता है ।

गौतम—“उदित हुआ सूर्य लोक में सब प्राणियों के लिए उद्योत करता है ।”

केशीकुमार—‘वह सूर्य कौन-सा है ?’

गौतम—‘जिनका संसार (राग-द्वेष-मोह) क्षीण हो गया है, ऐसे सर्वज्ञ जिन भास्कर का उदय संसार में हो चुका है । वे ही सारे विश्व में उद्योत करते हैं ।’

केशीकुमार—‘आप शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेम और शिव रूप, बाधा रहित कौनसा स्थान मानते हैं ?’

गौतम—‘लोक के अग्र भाग में एक ध्रुव स्थान है, जहाँ जरा, मृत्यु, व्याधि और वेदना नहीं है। किन्तु वहाँ आरोहण करना नितान्त दुष्कर है।’

केशीकुमार—‘वह कौन सा स्थान है ?’

गौतम—‘महर्षियों द्वारा प्राप्त वह स्थान निर्वाण, अव्याबाध्य, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध, इन नामों से विश्रुत है। मुने ! वह स्थान शाश्वतवास का है, लोक के अग्रभाग में स्थित है और दुरारोह है। इसे प्राप्त कर भव परम्परा का अन्त करने वाले मुनिजन चिन्तामुक्त हो जाते हैं।

श्रमण केशीकुमार ने चर्चा का उपसंहार करते हुए कहा—“महामुने गौतम ! आपकी प्रज्ञा उत्तम है। आपने मेरे संशयों का उच्छेद कर दिया है, अतः हे संशयातीत ! सर्व सूत्र महोदधि के पारगामिन् ! आपको नमस्कार है।” गणधर गौतम को वन्दना करके श्रमण केशीकुमार ने अपने बृहत् शिष्य समुदाय सहित उनसे पंच महाव्रत रूप धर्म को भाव से ग्रहण किया और महावीर के भिक्षु संघ में सम्मिलित हुए।<sup>३३</sup>

### उदकपेढाल और गौतम



नालन्दा में लेप नामक धनाढ्य गाथापति रहता था। वह श्रमणोपासक था। नालन्दा के ईशानकोण में उसने एक सुन्दर उदकशाला<sup>३४</sup> बनवाई थी। उस उदकशाला के निकट ही हस्तियाम नामक उद्यान के आरामागार में भगवान गौतम स्वामी

३३. उत्तराध्ययन, २३ वं अध्ययन के आधार पर

३४. प्रो० जेकोबी ने सेक्रेड बुक्स आव दि इस्ट, बाल्युम् ४५ में, तथा गोपालदास पटेल ने ‘महावीर नो संयम धर्म, (हिन्दी) पृ० १२७ में उदकशाला का अर्थ स्नानगृह किया है। जबकि आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणिभूमि-काण्ड, श्लोक ६७ में ‘प्रपा’ (प्याऊ) अर्थ किया है। यही अर्थ मागधी कोष कार शतावधानी पं० रत्नचन्द्र जी महाराज ने किया है। अर्ध मागधी कोष भा० २ पृ० २१८

ठहरे हुए थे । भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य उदकपेढाल पुत्र नामक निर्ग्रन्थ भी वहीं निकट ठहरे हुए थे । एकवार वे गणधर गौतम के निकट आये और बोले—“आयुष्मन् ! कुमार पुत्र नामक श्रमण निर्ग्रन्थ तुम्हारी मान्यताओं का प्ररूपण करते हैं, वे हठ पूर्वक गृहपति श्रमणोपासकों को इस प्रकार का नियम दिलवाते हैं कि “मैं समस्त प्राणियों की हिंसा का त्याग नहीं कर सकता, किन्तु चलने फिरने वाले प्राणियों की हिंसा का त्याग करूँगा ।” परन्तु विश्व के समस्त प्राणी त्रस व स्थावर योनियों में चक्र लगाते हैं । त्रस योनि से स्थावर में और स्थावर योनि से त्रस में अबाध गति से घूमते रहते हैं । इस कारण संसार का कोई भी प्राणी न तो मात्र त्रस है, और न मात्र स्थावर ही है, ऐसी स्थिति में उपर्युक्त प्रतिज्ञा करने वाला स्थावर प्राणियों की हिंसा की छूट समझ लेता है और वह उनकी हिंसा करता है । और वह इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा से च्युत होता है । जो प्राणी वर्तमान में स्थावर है, वह पूर्व जन्म में त्रस भी रह चुका है । आयुष्मन् ! इस प्रकार की प्रतिज्ञा दिलाने वाले को क्या दोष नहीं लगता ?”

गौतम ने समाधान करते हुए कहा—“महाभाग ! आपका यह कहना ठीक नहीं है, क्यों कि यह बिल्कुल अयथार्थ है एवं दूसरों को भुलावे में गिराने जैसा है । संसार के समस्त प्राणी एक योनि से दूसरी योनि में घूमते रहते हैं, यह ठीक है, जो प्राणी इस वक्त त्रस के रूप में उत्पन्न दिखाई देता है, उसी के सम्बन्ध में यह नियम लागू पड़ता है । आप जिसे इस समय त्रस रूप उत्पन्न मानते हैं, उसे ही हम त्रस कहते हैं । जिसके त्रस बनने योग्य कर्म उदय प्राप्त हो, उसे ही त्रस प्राणी कहा जाता है ।” इसी प्रकार स्थावर प्राणियों के विषय में भी समझना चाहिए । अतएव प्रतिज्ञा भंग होने तथा प्रतिज्ञा दिलाने वाले को दोष लगने की बात न्याय-संगत नहीं लगती ।”

गौतम ने इस स्थिति को अधिक स्पष्ट करते हुए उदाहरण पूर्वक बतलाते हुए कहा—“जिस प्रकार किसी व्यक्ति ने यह नियम लिया कि—मैं दीक्षित होकर जो साधु बन चुका होगा ऐसे व्यक्ति की हिंसा नहीं करूँगा, परन्तु गृहस्थ जीवन में रहते हुए व्यक्ति की हिंसा न करने का नियम मुझे नहीं है । ऐसी स्थिति में अगर कोई साधु बना और कुछ ही समय के पश्चात् अपने आपको साधुता के अनुपयुक्त पाकर गृहस्थ बन गया, अब अगर उपर्युक्त नियम लेने वाला व्यक्ति इस गृहस्थ बने हुए व्यक्ति की हिंसा करता है, तो उसकी प्रतिज्ञा का भंग नहीं होता ।

इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने केवल त्रस प्राणियों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया हो, उसे इस जन्म में जो प्राणी स्थावर हैं, उनकी हिंसा करने पर भी प्रतिज्ञा भंग का दोष नहीं लगता ।”

एक अन्य प्रश्न करते हुए उदकपेढालपुत्र ने कहा—“आयुष्मन् ! क्या ऐसा भी कोई समय हो सकता है जिसमें संसार के सब जंगम प्राणी स्थावर के रूप में उत्पन्न हो जावें और फिर जो जंगम प्राणियों की हिंसा न करना चाहते हों, उन्हें इस व्रत की आवश्यकता ही न रहे, अथवा उनके द्वारा जंगम प्राणियों की हिंसा न होने की संभावना ही न रहे ?

गौतम ने प्रश्न का समाधान करते हुए कहा—“आयुष्मन् ! ऐसा होना सम्भव नहीं, क्योंकि सभी प्राणियों की विचारधारा व क्रियापद्धति एक साथ ही इतनी हीन नहीं हो सकती है, जिसके कारण सभी स्थावर के रूप में जन्म लें । प्रत्येक समय में पृथक्-पृथक् शक्ति व पुरुषार्थ करने वाले प्राणी अपने लिए भिन्न भिन्न गति-स्थिति तैयार करते रहते हैं । जैसे कि कुछ लोग, अपने आप को दीक्षित होने में असमर्थ पाकर पोषध व अणुव्रतों के द्वारा देवता व मनुष्य आदि की शुभगति योग्य कर्म उपार्जन करते हैं । दूसरे कुछ अधिक लालसा वाले परिग्रही लोग नरक व तिर्यच आदि की दुर्गति के योग्य कर्म उपार्जन करते हैं । कुछ दीक्षित साधु संत लोग उच्चकोटि के देवत्व के योग्य कर्मोपार्जन करते हैं । कुछ तथाकथित नामधारी कामास्कृत साधु अमुरयोनि व घोर पाप कर्म करने वाले अन्य स्थानों की तैयारी करते हैं । वहाँ से छूटकर भी वे अन्ध, मूक, बधिर अंगहीनरूप दुर्गति के कर्म उपार्जन करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक प्राणी अपने अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न गतियाँ प्राप्त करता रहता है । तब यह कैसे हो सकता है कि सभी प्राणियों को एक समान ही स्थान, व गति मिले । दूसरे जहाँ विविध प्रकार के प्राणी हैं, वहाँ उनके आयुष्य में भी विविधता है । आयुष्य की विविधता का तात्पर्य है कि उनकी मृत्यु भी भिन्न समय में होती है । भिन्न-भिन्न समय में मृत्यु होने का अर्थ है कि ऐसा कभी नहीं हो सकता कि सभी प्राणी एक ही साथ मृत्यु प्राप्त होकर एक समान गति प्राप्त करें, जिसके फलस्वरूप किसी को व्रत लेने व हिंसा करने का प्रसंग ही न आवे ।

गौतम के द्वारा तर्क युक्त समाधान पाकर उदकपेढाल पुत्र का संशय दूर हुआ । वह कुछ क्षण किर्कतव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा, फिर बिना विनय सत्कार किए ही चलने लगा तो गौतम ने उसे शिक्षात्मक वाक्य कहकर विनय धर्म का

उपदेश दिया । गौतम के शिक्षापद सुनकर उदकपेढाल ने क्षमा माँगी और भगवान् महावीर के निकट आकर पंच महाव्रत रूप धर्म स्वीकार किया ।<sup>३४</sup>

### विकास और ह्रास का कारण



एक बार राजगृह के गुणशीलक उद्यान में भगवान् महावीर पधारे । धर्म प्रवचन के पश्चात् गणधर गौतम के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई । भगवान् महावीर के निकट आकर पूछा—“भगवन् ! आत्मा का विकास और ह्रास किस कारण होता है ?

भगवान् ने कहा—‘गौतम’ ! मैं इस तत्त्व को एक रूपक द्वारा तुम्हें समझाता हूँ । कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा अपनी ज्योति, शुभ्रता और सौम्यता आदि में पूर्णिमा के चन्द्रमा से हीन होता है । द्वितीया का चन्द्रमा उससे हीनतर होता हुआ अमावस्या के दिन हीनतम स्थिति को प्राप्त हो जाता है । उसकी ज्योत्स्ना, कांति और शीतलता आदि गुणों का आभास तक नहीं मिलता ।”

“भन्ते ! यह बिल्कुल सत्य है ।

“गौतम ! जो साधक क्षमा, सन्तोष, गुप्ति, सरलता, लघुता—नम्रता, मृदुता सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और त्याग—उक्त दस मुनि धर्मों के प्रति उपेक्षा करता है । असावधानी बरतता है, उनका यथाविधि पालन नहीं करता है, वह आत्मा की उज्ज्वलता, उच्चता और समता आदि गुणों से कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक के चन्द्रमा की स्थिति के समान ह्रास की स्थिति में चलता रहता है । उसके आत्मगुण हीन से हीनतर होते चले जाते हैं ।

“.....पुनः शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा विकास की ओर ऊर्ध्वगामी बनता है । उसकी ज्योत्स्ना और कान्ति आदि प्रतिरात्रि विकसित होते जाते हैं । प्रतिपदा के चन्द्रमा की तुलना में द्वितीया का चन्द्रमा अधिक ज्योतिर्मय होता है और इसी क्रम से अन्ततः पूर्णिमा का चन्द्रमा विकास की पूर्ण स्थिति में पहुँच जाता है । वह सब कलाओं से परिपूर्ण हो जाता है ।”

३४. सूत्र कृतांग २।७ । गौतम के शिक्षा वाक्य देखें खण्ड ४ निर्भीक शिष्यक में

“गौतम ! इसी प्रकार जो मुमुक्षु श्रमण-धर्म स्वीकार करके क्षमा आदि दश धर्मों का आत्मा में विकास करता जाता है, वह आत्मा की उच्च से उच्चतर और उच्चतम भूमिका को प्राप्त करता चला जाता है ।”

“आत्मा के विकास और ह्रास का रहस्य जान कर गौतम ने प्रभु को वन्दन करते हुए कहा—“सत्य है प्रभु आपका कथन ।”<sup>३५</sup>

### उत्थान और पतन का रहस्य



एकबार भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में विराजमान थे । गणधर गौतम भगवान् के पास आए, विनयपूर्वक बद्धाञ्जलि होकर पूछा, —“भन्ते ! यह आत्मा कभी गुरुत्व (भारीपन) और कभी लघुत्व (हल्कापन) प्राप्त करता है, इसका क्या रहस्य है ?

भगवान् ने इस गुरु गम्भीर प्रश्न को एक रूपक देकर समझाया—“गौतम ! कोई मनुष्य एक सूखे हुए छिद्र रहित तुम्बे को दर्भ (डाभ) आदि से वेष्टित कर उस-पर मिट्टी का एक लेप करता है और उसे धूप में सुखा देता है । जब वह पहला लेप सूक जाता है, तो पुनः उसी प्रकार तुम्बे पर दूसरा लेप करता है और उसे भी सुखा लेता है । इस क्रम से वह आठ लेप उस तुम्बे पर करता है और सुखा लेता है । पश्चात् वह पुरुष उस तुम्बे को किसी गहरे पानी की सतह पर छोड़ देता है तो क्या वह तुम्बा तैरेगा या डूब जाएगा ?”

“भन्ते ! वह तो डूब ही जाएगा ।”

“गौतम ! उसी प्रकार यह आत्मा जब हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य, कषाय आदि असत् प्रवृत्ति रूप पाप कर्म करता है, तो ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रूप पुद्गल का लेप अपने ऊपर लगा लेता है, और उसी कर्म रूपी लेप के कारण वह गुरुत्व (भारीपन) प्राप्त करके नरक, तिर्यंच गति रूप संसार समुद्र में डूब जाता है ।”

“और जब उस तुम्बे पर से दर्भ आदि के बन्धन सड़गल कर टूटने लगते हैं, मिट्टी के लेप साफ होते जाते हैं, तो वह तुम्बा जलाशय की जमीन की सतह से कुछ



कुछ ऊपर उठने लगता है । धीरे-धीरे जब समस्त लेप उतर जाते हैं तो तुम्बा अपने मूल रूप में आ जाता है और पानी की ठीक ऊपर की सतह पर स्वतः ही तैरने लग जाता है ।”

“इसी प्रकार आत्मा के कर्म जब कुछ क्षीण होते हैं, तो वह ऊपर उठने लगता है । जब समस्त कर्म-मल क्षीण हो जाते हैं, तो आत्मा संसार से सर्वतोभावेन ऊपर उठ आता है, लोकाग्र में स्थित होकर सिद्ध, बुद्ध, निरंजन, निर्विकार परमात्मा हो जाता है । यही आत्मा का लघुत्व (हल्कापन) है ।

गौतम की जिज्ञासा शान्त हुई । वे श्रद्धावन्त होकर कह उठे—“भन्ते ! यह सत्य कहा आपने ।”<sup>३६</sup>

० ०

२

## कर्मफल विषयक

गणधर गौतम द्वारा स्थान-स्थान पर कर्मफल-विषयक अर्थात् किसी मनुष्य या देव की समृद्धि देखकर अथवा किसी मनुष्य को घोर कष्ट पाता देखकर उसके विगत जीवन से सम्बन्धित प्रश्न किये गये हैं ।

### प्रदेशीराजा

रायपसेणी सूत्र का पूरा प्रदेशीप्रकरण गौतम के प्रश्न का उत्तर है ।<sup>३७</sup> सूर्याभि देवता जब भगवान महावीर के समवसरण में अपनी विशाल ऋद्धि एवं दैविक

३६. ज्ञाता धर्मकथा ६

३७. प्रदेशी राजा के वर्णन की तुलना के लिए देखें बौद्ध ग्रन्थ-‘पयासि राजन्य सुत्त’ (दीघनिकाय २३)

शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन एवं दिव्य नाटक दिखाता है तो, गौतम स्वामी के मन में जिज्ञासा उठती है—इसने पूर्व भव में ऐसा क्या पुण्य किया था, यह कौन था ? इसने क्या दान दिया, क्या रूखा-सूखा निर्दोष आहार किया, किस प्रकार का तपश्चरण किया और किन-किन विशिष्ट साधना-विधियों की आराधना को ? किस तथारूप श्रमण के पास आर्यधर्म का श्रवण कर उस पर श्रद्धा प्रतीति एवं आचरण किया, जिसके प्रभाव से इस प्रकार की विपुल दिव्य देव ऋद्धि प्राप्त की है ?” ३८

गौतम स्वामी के इसी प्रश्न के उत्तर में पूरा रायपसेणी सूत्र का व्याख्यान हो जाता है ।

### मृगापुत्र



इसी प्रकार विपाक सूत्र का पूरा वर्णन पूर्व एवं भावी जीवन के दुष्कर्मों एवं सत्कर्मों का लेखा जोखा, एवं उनके कटु एवं मधुर परिणामों की रोमांचक कहानी प्रस्तुत करते हैं ।

मृगापुत्र का वर्णन पीछे किया जा चुका है, उसकी दुःखमय बीभत्स अवस्था देखकर गौतम स्वामी के मन में वितर्क उठता है—“इस पुरुष ने पूर्व जन्म में किस प्रकार के घोर, दुष्कर्म किये होंगे, जिनके कटु परिणामों को भोगता हुआ यह प्रत्यक्ष में ही नरक के सदृश घोर वेदना अनुभव कर रहा है ?” ३९

गौतम स्वामी के इसी वितर्क के उत्तर में भगवान महावीर मृगापुत्र के पूर्व जीवन की पाप-पूर्ण लोमहर्षक कहानी गौतम के समक्ष उद्घाटित कर देते हैं । इसी प्रकार उज्जित कुमार को जब अपराधी के रूप में वध्यभूमि की ओर ले जाते देखते हैं, तो उनके मन में कष्ट के साथ उसके कृत्याकृत्य का विमर्श भी होता है, वे भगवान महावीर से उसके कष्ट पाने का कारण पूछते हैं और भगवान महावीर उसके

३८. पुब्बभवे के आसी ? किनामए ?....किंवा दच्चा, किंवा भोच्चा, किंवा किच्चा, किंवा समायरित्ता....जेणं सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी जाव देवाणु भावे लद्धे ?  
—रायपसेणी ४२

३९. अहो णं इमे दारए पुरा पोरणाणं दुच्चिष्णाणं....पच्चक्खं खलु अयं पुरिसे नरग-पडिस्सियं वेयणं वेयइ त्ति....।  
—विपाक १।१

दुष्कर्मों के वर्णन सुनाकर—कडाणं कम्माणं वेइयत्ता मोक्खो णत्थि अवेइत्ता <sup>४०</sup> के सिद्धान्त वाक्य की पुष्टि करते हैं ।

### सुबाहुकुमार

दुःख विपाक की भांति सुख विपाक में भी दस पुरुषों की जीवन गाथा है । सुबाहु कुमार की समृद्धि, सौम्यता, भव्यता आदि उत्कृष्ट मनुष्य ऋद्धि देखकर गौतम स्वामी भगवान से पूछते हैं—“भंते ! सुबाहुकुमार इतना इष्ट, प्रिय, मनोहर सौम्य, सुभग, प्रिय दर्शन लग रहा है, इस प्रकार की उत्तम मनुष्य ऋद्धि इसने प्राप्त की है वह किन शुभ कर्मों, उत्कृष्ट तपश्चरणों का फल है ?” इसके उत्तर में भगवान सुबाहु कुमार का पूर्व जीवन वृत्त सुनाते हैं ।<sup>४१</sup>

० ०

३

### लोक विषयक

#### लोक एवं जीव

गौतम स्वामी ने पूछा—“भगवन् ! यह लोक कितना बड़ा है ?”

भगवान ने कहा—गौतम ! यह लोक बहुत ही बड़ा है, पूर्व-पश्चिम आदि सभी दिशाओं में असंख्य कोटा-कोटि योजन लंबा चौड़ा है, इसका विस्तार अपरिमित है ।’

४०. भगवती सूत्र

४१. विस्तार के लिए देखिए-विपाक सूत्र २।

गौतम—भगवन् ! इतने विशाल लोक में ऐसा कोई परमाणु जितना प्रदेश भी है, जहाँ यह जीव उत्पन्न न हुआ हो, और न जहाँ मरण प्राप्त किया हो ?”

भगवान—गौतम ! यह बात यथार्थ नहीं है । (भगवान ने उदाहरण दिया)  
गौतम ! जिस प्रकार कोई एक पुरुष सौ बकरी रखने के लिए एक बाड़ा बनाता है । और फिर उसमें उतनी सी जगह में हजार बकरी भर देवे, उसमें खूब पानी, और घास चरने की सुविधा हो, अब छः मास तक वे एक हजार बकरियाँ उस बाड़े में बंद रही तो, क्या यह संभव है कि उस बाड़े का एक कोई परमाणु जितना भी प्रदेश उन बकरियों के मूत्र, लींड़ी, सींग, पद-नख आदि के द्वारा अस्पृष्ट रहा हो ?

गौतम—भगवन् ! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता !

भगवान—गौतम ! उस बाड़े में एकाधा प्रदेश ऐसा रह भी सकता है, जहाँ बकरी की लींड़ी, मूत्र आदि का स्पर्श न हुआ हो, किंतु लोक के विषय में यह नहीं हो सकता । चूँकि लोक शाश्वत है, संसार अनादि है, और जीव नित्य है तथा कर्म एवं जन्म मरण की बहुलता के कारण एक भी ऐसा प्रदेश नहीं है, जहाँ जीव ने जन्म धारण न किया हो, तथा मृत्यु प्राप्त न की हो ।”

### परमाणु शाश्वत अशाश्वत

गौतम स्वामी ने पूछा—“भगवन् परमाणु शाश्वत है या अशाश्वत ?”

भगवान ने कहा—“गौतम ! परमाणु द्रव्य रूप में शाश्वत है, और पर्याय रूप में अशाश्वत है ।”

### अस्तित्व नास्तित्व

गौतम स्वामी ने पूछा—“भगवन् ! क्या अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है, और नास्तित्व नास्तित्व में ?”

४२. नत्थि केई परमाणु पोम्मल मेत्ते वि पएसे जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि ।  
—भगवती १२।७

४३. भगवती सूत्र १४।४

भगवान्—“हाँ गौतम ! यह ठीक है ।”

गौतम—“भगवन् ! क्या वह प्रयोग (जीव के उद्यम) से परिणमता है, या स्वभाव से ?”

भगवन्—गौतम ! प्रयोग से भी परिणमता है और स्वभाव से भी ?”<sup>४४</sup>

### देवासुर संग्राम



गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! क्या देव और असुरों का संग्राम होता है ?”

भगवान्—“हाँ, गौतम ! होता है, जब उनमें संग्राम होता है, तब तृण, लकड़ी पत्ता और कंकर भी, जिस किसी वस्तु को देव स्पर्श करते हैं तब वह उनका शस्त्र बन जाता है, किंतु असुर कुमार के लिए तो उनके विकुर्वणा किए हुए शस्त्र मात्र ही शस्त्र होते हैं ?”<sup>४५</sup>

### देवासुर विरोध का कारण



गौतम स्वामी ने पूछा—“भगवन् ! असुरकुमार सौधर्मकल्प देवलोक तक जाते हैं इसका क्या कारण है ?”

भगवान्—“गौतम ! उन देवों एवं असुरकुमारों में जन्मना वर (भव-प्रत्ययिक वर) होता है । वे देवों को, देवियों के साथ आनन्द भोगते हुए कष्ट देते हैं एवं उनके दिव्य रत्नों को चुराकर एकान्त में कहीं जाकर छुप जाते हैं ।”<sup>४६</sup>

### देवों के भेद



गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—“भगवन् ! देव कितने प्रकार के होते हैं ?”

४४. भगवती १।३

४५. भगवती १।८।७

४६. भगवती १।८।७

भगवान ने कहा—“गौतम ! देव पाँच प्रकार के कहे गये हैं ।”

- (१) भव्य द्रव्य देव—भविष्य में देव योनि प्राप्त करने वाला
- (२) नरदेव—मनुष्यों में देव के समान पूज्य ।
- (३) धर्मदेव—शास्त्र आदि का उपदेश करने वाला धर्मगुरु ।
- (४) देवाधिदेव—मनुष्य एवं देवों के पूज्य अरिहंत ।
- (४) भावदेव—देवगति को प्राप्त देवता ।<sup>४७</sup>

**क्या देवता अलोक में हाथ फैला सकता है ?**



गौतम ने भगवान से पूछा—“भन्ते ! क्या महान ऋद्धि वाला देव लोकान्त पर खड़ा होकर अपना हाथ अलोक में फैलाने या खींचने में समर्थ हो सकता है ?

भगवान ने कहा—“गौतम ऐसा नहीं हो सकता है ।”

गौतम—“भन्ते ! किस कारण से ऐसा नहीं हो सकता ?”

भगवान—“गौतम ! अलोक में धर्मास्तिकाय का अभाव है, अतः वहाँ जीव एवं पुद्गल की गति नहीं हो सकती । पुद्गल आहार रूप में, शरीर रूप में, कलेवर रूप में तथा श्वासोच्छ्वास आदि के रूप में सदा जीव के साथ उपचित (संलग्न) रहते हैं, अर्थात् पुद्गल स्वभावतः जीवानुगामी होते हैं, जहाँ जिस क्षेत्र में जीव होता है, वहीं पुद्गल गति कर सकता है, और इसी प्रकार पुद्गल का आश्रय ग्रहण कर जीव गति कर सकता है । अलोक में दोनों का अभाव होने से वहाँ हाथ आदि का संकोच विकास तथा स्पर्श नहीं किया जा सकता ।”<sup>४८</sup>

---

नोट—सूर्य की गति आदि के सम्बन्ध में सूर्यप्रज्ञप्ति (पाहुड १ सूत्र १०) में गौतम के प्रश्न एवं भगवान के उत्तर द्रष्टव्य हैं । इसी प्रकार नरक आदि के वर्णन के लिए भगवती सूत्र के अनेक स्थल एवं प्रज्ञापना आदि में देखने चाहिए । गौतम स्वामी के विविध प्रश्नों का वर्गीकृत रूप ‘भगवतीसार’ (गोपालदास पटेल) में भी देखा जा सकता है ।

---

४७. भगवती १२।९

४८. भगवती १६।८

गुड में कितने रस ?

●

गौतम ने पूछा—भगवन् ! फाणित गुड (गुड़ की राब), में मधुर रस है या कटु रस ? इसी प्रकार उसमें वर्ण, गन्ध और स्पर्श कितने हैं ?

भगवान ने कहा—“गौतम ! व्यवहार दृष्टि से गुड में एक मधुर रस कहा जाता है, किन्तु निश्चय दृष्टि से उसमें पांच रस, पांच वर्ण, दो गन्ध एवं आठ स्पर्श विद्यमान रहते हैं ।”<sup>४९</sup>

माता-पिता का अंग

●

गौतम ने पूछा—भगवन् ! ( गर्भगत जीव में ) माता के अंग कितने होते हैं ?

भगवान ने कहा—“गौतम ! माता के तीन अंग (प्राणि में) रहते हैं—मांस, रक्त और मस्तुलुंग—भेजा ।

गौतम—भगवन् ! पिता के अंग कितने होते हैं ?

भगवान—गौतम ! पिता के भी तीन अंग होते हैं—अस्थि, मज्जा तथा केश-दाढ़ी-रोम-नख !

गौतम—भगवन् ! माता के ये अंग संतान में कितने काल तक रहते हैं ?

भगवान—गौतम ! जितने काल तक संतान का शरीर स्थिर रहता है, तब तक माता-पिता के अंग उसमें रहते हैं ।”<sup>५०</sup>

● ●

---

४९. भगवती १८।६

५०. भगवती १।७

## ४

## स्फुट - विषय

## उन्माद

●

भगवान से गौतम ने पूछा—“भगवन् ! उन्माद (विवेक हीनता) कितनी प्रकार के हैं ?

भगवान—गौतम ! दो प्रकार के हैं ।

(१) यक्षावेश रूप

(२) मोहावेश रूप (अज्ञान एवं काम के आवेश)

प्रथम में—यक्ष आदि के शरीर में प्रवेश करने पर चेतना का भ्रंश हो जाता है, विवेक लुप्त हो जाता है ।

दूसरे में—मोह कर्म के उदय से अतत्त्व में तत्त्व रूप श्रद्धा होती है, विषायादि के कटु फल जानकर भी उनका सेवन करता है, और कामावेश के कारण हिताहित का भान भूल जाता है ।<sup>५१</sup>

## उपधि

●

एक बार भगवान महावीर राजगृह में पधारे । वहाँ गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—भगवन् ! उपधि (जीवन निर्वाह में उपयोगी साधन) कितने प्रकार की हैं ?

भगवान ने कहा—गौतम ! उपधि तीन प्रकार की है । कर्मरूप उपधि, शरीर रूप उपधि तथा वस्त्र पात्र आदि सामग्री रूप उपधि । नैरयिक एवं ऐकेन्द्रिय जीवों को प्रथम दो प्रकार की उपधि होती है, बाकी सभी जीवों की तीन प्रकार की उपधि होती है ।<sup>५२</sup>

५१. भगवती १४।३

५२. भगवती १८।७



राजगृह क्या है ?

●

गौतम ने पूछा—भगवन् ! क्या राजगृह नगर पृथ्वी कहा जाय, जल कहा जाय, कूट कहा जाय, शैल कहा जाय अथवा अचित्त और मिश्र द्रव्य कहा जाय ?

भगवान्—गौतम ! इन सब का समुदाय संघात ही राजगृह है ।<sup>५३</sup>

लवण समुद्र का पानी

●

भगवान् से गौतम ने पूछा—भगवन् ! लवण समुद्र का पानी उछालें मारता हुआ है, या अक्षुब्ध है ?

भगवान् ने कहा—गौतम ! लवण समुद्र उछाल मारते हुए पानी वाला है ।<sup>५४</sup>

मेघ स्त्री या पुरुष ?

●

गौतम ने पूछा—“भगवन् ! मेघ आत्म ऋद्धि से गति करता है या पर ऋद्धि से ?

भगवान्—“गौतम ! मेघ परऋद्धि (वायु अथवा देव द्वारा प्रेरित होकर) गति करता है । वह पर-कर्म, पर-प्रयोग से गतिशील है ।

गौतम—भगवन् ! मेघ क्या स्त्री है, पुरुष है, हाथी, है घोड़ा है, वह क्या है ?

भगवान्—गौतम ! वह न स्त्री है, न पुरुष है, न हाथी है, न घोड़ा है, वह मेघ है ।<sup>५५</sup>

घोड़े का शब्द

●

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! जब घोड़ा दौड़ता है तब वह ‘खु-खु’ शब्द क्यों करता है ?

५३. भगवती ५।९

५४. भगवती ६।८

५५. भगवती ३।४

भगवान्—गौतम ! जब घोड़ा दौड़ता है तब उसके हृदय एवं यकृत के बीच में 'कर्कट' नामक वायु उत्पन्न होता है, उस वायु के कारण 'खु-खु' शब्द उठता है।<sup>५६</sup>

**जृम्भक देव**

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! जृम्भक देव, जृम्भक (स्वच्छंदचारी) क्यों कहलाते हैं ?

भगवान्—गौतम ! उनका स्वभाव हमेशा प्रमोदयुक्त होता है, वे अत्यंत क्रीड़ाशील, आनंदी, कंदर्प—रतिप्रिय, एवं तीव्र काम स्वभाववाले होने के कारण वे जृम्भक (स्वच्छंदचारी) कहलाते हैं।<sup>५७</sup>

**तीर्थ और तीर्थंकर**

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! तीर्थ को तीर्थ कहा जाता है या तीर्थंकर को तीर्थ ?

भगवान्—गौतम ! अर्हत् तो अवश्य ही तीर्थंकर हैं, परन्तु चार प्रकार का श्रमण प्रधान संघ—साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका रूप यह तीर्थ है।<sup>५८</sup>

**दर्शन कितने ?**

गौतम स्वामी—भगवन् ! समवसरण (दर्शन-मत) कितने हैं ?

भगवान्—गौतम ! समवसरण (मत-दर्शन) चार हैं—क्रियावादी, अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी।<sup>५९</sup>

० ०

५६. भगवती १०।३

५७. भगवती १४।८

५८. भगवती २०।९

५९. विशेष विवरण के लिए देखें—सूत्र कृतांग १।१२। आचारांग १।१। भगवती ३०।१ आदि।



## परिशिष्ट

- प्रयुक्त ग्रन्थ सूची
- गणधरों का लेखा
- गौतम रास
- महावीर स्वामी का चौढालिया



## ‘इन्द्रभूति गौतम’ में प्रयुक्त ग्रन्थ सूची

अन्तगडसूत्र	उपासकदशांग सूत्र
अत्रिस्मृति	ऋग्वेद
अर्धभागधी कोष (पं० रत्नचन्द्र जी म०)	ओघनियुक्ति
अनुयोगद्वार सूत्र	„ —(भाष्य)
अनुत्तरोपपातिक सूत्र	औपपातिक सूत्र
अभिधान चिन्तामणि कोश	कठ उपनिषद्
अभिधानराजेन्द्र कोश	कल्पसूत्र
आचारांग सूत्र	„ कल्पलता
आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन	„ कल्पार्थ प्रबोधिनी
(मुनि नगराज जी डी० लिट्०)	„ सुबोधिका टीका
आगम युग का जैन दर्शन	कर्मग्रन्थ
(श्री दलसुख मालवणिया)	कषाय पाहुड (टीका)
आप्टेज् संस्कृत-ईंग्लिश डिक्शनरी	कौषितकी उपनिषद्
आत्मसिद्धि शास्त्र (श्रीमद् राजचन्द्र)	गणधरवाद
आवश्यक चूर्णि	गौतमधर्म सूत्र
आवश्यक नियुक्ति	ज्ञाता धर्म कथा सूत्र
आवश्यक सूत्र (हारिभद्रीय)	चार्वाक दर्शन (षड्दर्शन)
उत्तराध्ययन सूत्र	छांदोग्य उपनिषद्
उत्तराध्ययन नियुक्ति	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन	जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज
(मुनि नथमल जी)	(डा० जगदीशचन्द्र)
उत्तरपुराण (गुणभद्र)	डिक्शनरी आव फालि प्रोपर नेम्स
उपदेशपद टीका	त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरितम्

तीर्थकर महावीर

—(विजयेन्द्रसूरि)

तैत्तिरीय संहिता

तैत्तिरीय ब्राह्मण

दर्शन का प्रयोजन (डा० भगवान दास)

दर्शन रत्न रत्नाकर

दशवैकालिक सूत्र

„ —निर्युक्ति

दोष निकाय

नन्दी सूत्र

नियमसार

निरावलिया सूत्र

निरुक्त

निशीथचूर्णि

Nature of conseious ness in

Hindu Philosophy.

न्याममंजरी

न्यायवार्तिक

न्यायसूत्र

पंचास्तिकाय

प्रज्ञापना सूत्र

प्रवचनसारोद्धार

बुद्ध चरित

ब्रह्मबिन्दु उपनिषद्

ब्रह्मजाल सूत्र

ब्रह्मसूत्र (शांकर भाष्य)

बृहद्कल्प सूत्र

बृहदारण्यक उपनिषद्

बृहदारण्यक (भाष्य वार्तिक)

बृहदारण्यक उपनिषद् (शांकर भाष्य)

भगवती सूत्र (पं० बेचरदास जी)

भगवती सार (गोपालदास पटेल)

भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(देवेन्द्र मुनि शास्त्री)

भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास

—डा० वी० सी० पाण्डे

भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश

मज्झिमनिकाय

मनुस्मृति

महाप्रत्याख्यान

महाभारत

महावीर चरियं—गुणचन्द्र

„ —नेमिचन्द्र

माण्डुक्य उपनिषद्

मीमांसा सूत्र

मुण्डक उपनिषद् (शांकर भाष्य)

मंत्रायणी उपनिषद्

मैत्र्युपनिषद्

यजुर्वेद

रायपसेणीसूत्र

वाशिष्टधर्मसूत्र

विनयपिटक

विपाक सूत्र

विष्णु पुराण

विशेषावश्यक भाष्य

वैदिक कोश (सूर्यकान्त)

वैशेषिक सूत्र

शतपथ ब्राह्मण

षट्खंडागम (धवला)

सन्मतितर्क (सिद्धसेन)

समयसार

समवायांगसूत्र

संयुत्तनिकाय

स्थानांग सूत्र

सांख्य कारिका

सुत्त निपात

सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र

सूत्रकृतांग सूत्र

स्मृति चन्द्रिका

सौभाग्यपंचम्यादि पर्वकथा संग्रह

श्वेताश्वतरोपनिषद्





## श्री गौतम रास



### दोहा

गुण गाऊं गौतम तणा, लब्धितणां भण्डार ।  
बड़ा शिष्य भगवन्तना, जाने सहु संसार ॥  
प्रति बुभया प्रभु जी कने, गणधर गौतम स्वाम ।  
संजम पाली सिद्ध हुआ, लीजे नितप्रति नाम ॥

### ढाल

तीरथनाथ त्रिभुवन धणी,  
प्रभु शासणना सिरदार ।  
भक्ति कियां भगवन्त नी,  
जाके वांछित फल दातार ।  
सुमर्यां होय सकल सुखकार जी,  
नित बरते जय जयकार जी ।  
प्रभु पहुँच्या मुक्ति मंझार जी,  
प्रभु थाप्या तीरथ-चार जी ।  
चारों संघ मांहि सिरदार जी,  
गौतम नाम बड़ा गणधार जी ।  
जाने होज्यो म्हारो नमस्कार जी,  
हिवडा बीच बार हजार जी ।  
श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

सोलसा सोना सारखा जी,  
 अति सुन्दर वर्ण शरीर ।  
 कंचन कसौटी चढ़ावियो,  
 भगवती में कह्यो महावीर जी ।  
 जाने दीठा हषित हीर जो,  
 स्वामी सायर जिम गम्भीर जी ।  
 बली खम दम संजम धीर जी,  
 जारी वाणी मीठी खांड खीर जी ।  
 मीठी क्षीर समुद्र ज्यूँ नीर जो,  
 छह काय जीवांरा पीर जी ।  
 हुआ वीर तणां बजीर जी,  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

गौरा ने घणा फूटरा जी,  
 कंचन कोमल गात ।  
 देही जारी दिपुं दिपुं करे,  
 देवता पिण कितरि क बात जी ।  
 रोग रहित काया सात हाथ जी,  
 घणा रह्या गुरां जी रे साथ जी ।  
 सेवा कीधी दिन ने रात जी,  
 पूछा कीधी जोडी दोनों हाथ जी ।  
 जारी कहूँ कठालग बात जी,  
 जारे वीर दियो माथे हाथ जी ।  
 हुआ तीन भुवनरा नाथ जी,  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

प्रथम संघयण संठाण सुं जी,  
 गुण गहिरा भरपूर ।  
 ब्रह्मचर्य में बस रह्या,  
 बलि तपस्या घोर करूर जी ।

कायर कांपी जावे दूर जी,  
 दीपे तपस्या में अतिशूर जी ।  
 आगे कर्म किया चकचूर जी,  
 जारो चोखो घणो छै नूर जी ।  
 जारो भजन किया दुःख दूर जी,  
 म्हारी बन्दना उगते सूर जी ।  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

अभिग्रह कीधो आकरो जी,  
 सूत्र भगवती रे मांय जी ।  
 चार ज्ञान चवदे पूर्व धणी,  
 बलि तेजु लेश्या पिण्ड मांय जी ।  
 दपटी राखी छै मन मांय जी,  
 दीनों ध्यानसु चित्त लगाय जी ।  
 उकडू बँठा शीस नमाय जी,  
 जारो करणी में कमीय न कांय जी ।  
 जारो भजन कियां सुख पाय जी,  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

पूछा जद कीधी घणी जी,  
 आणी मन आनन्द जी ।  
 श्रद्धा में संशय नहीं उपनो,  
 उपनो केवल उछरंग जी ।  
 वांदे श्री वीर जिनन्द जी,  
 पूछिया देश प्रदेशनास्कन्ध जी ।  
 अनन्त ज्ञानी त्रिशलाना नन्द जी,  
 सूत्र मेल दिया संधो-संध जी ।  
 जाने सेवे सुर नर वृन्द जी,  
 तारा बीच बिराजे चन्द जी ।  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

सूत्र भगवती में पूछिया जी,  
 प्रश्न छत्तीस हजार ।  
 अंग उपांग में पूछिया जी,  
 पूछा कीधी पहले पार जी ।  
 तीरथनाथ किया निस्तार जी ।  
 गौतम लिया हिरदा में धार जी ।  
 ज़ारी बुद्धि रो नहीं छं पार जी,  
 स्वामी ज्ञान तणां भण्डार जी ।  
 घणां जीवां पं कियो उपकार जी,  
 उण पुरुषारी जाऊं बलिहार जी ।  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

एक दिन गौतम मन चितवे जी,  
 मने क्यों न उपजे केवलज्ञान ।  
 खेद पाम्या प्रभु देखने,  
 बुलाया श्रीवर्धमान जी ।  
 मन वांछित देवे दान जी,  
 गौतम सन्मुख उभा आन जी ।  
 बीर दियो आदर सन्मान जी,  
 गौतम गुण-रत्नां री खान जी ।  
 चित्त निर्मल राखो ध्यान जी,  
 तजो मोह मत्सर अभिमान जी ।  
 छह काया ने दो अभय-दान जी,  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

थारे ने म्हारे गोयमा रे,  
 घणा कालनी प्रीत ।  
 आगे ही आपां भेला रह्या,  
 बलि लोहड़ बड़ाई नी रीत जी ।

मोह कर्म ने लीजो थे जीत जी,  
 केवल आड़ी आई छै भीत जी ।  
 थे तो शिष्य बड़ा सुविनीत जी,  
 थे तो राख जो रूड़ी रीत जी ।  
 थे तो पालजो पूरी प्रीत जी,  
 राखी मोक्ष जावण रो चित्त जी ।

श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

अब के अणो भव आंतरे,  
 आपां दोनू बराबर होय ।  
 अजर अमर सुख सासता,  
 जठे जन्म मरण नहीं होय जी ।  
 भूख तृषा न लागे कोय जी,  
 गुरु मोटा मिलिया मोय जी ।  
 म्हारे कमी रही नहीं कोय जी,  
 वीर ने सामा रह्या छै जोय जी ।  
 दीठा हषित हिवड़ो होय जी,  
 मोहनी कर्म ने दीधो खोय जी ।

श्री गौतम स्वामी में गुणघणा.....

वीर वचन प्रभु सांभली जी,  
 कीधो कर्मा सु जंग ।  
 करणी कीधो निर्मली,  
 शिष्य वीर तणां सुविनीत जी ।  
 हुआ ब्राह्मण केरा पूत जी,  
 छोड़ी नातीलां सु प्रीत जी ।  
 जारे वीर वचन आया चित्त जी,  
 तज दीनी खोटी रीत जी ।  
 जारे आई सांजी प्रीत जी,  
 जोड़ी जुगत मुक्ति सु प्रीत जी ।

तपसी मोटा काकड़ा भूत जी,  
 प्रभु गया जमरों जीत जी ।  
 धर्म ध्यानी जीवारा मीत जी,  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

ज्ञान, दर्शन, चारित्र भणौ जी,  
 पाले निर अतिचार ।  
 बेले बेले पारणा प्रभु,  
 जीत्या सम ने रीस जी ।  
 जांरी करणी बिसकाबीस जी,  
 जारो भजन कियो निशदिस जी ।  
 पूरो मननी सकल जगीस जी,  
 जाने नमाऊँ गृहारो शीस जी ।  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

स्व-मुख वीर वखाणिया जी,  
 गौतम ने तिण बार ।  
 चर्चावादी तू अतिघणो,  
 हेतु युक्ति अनेक प्रकार जी ।  
 पाखण्डिया रो जीतण हार जी,  
 बीजा साधु सहू थारी लार जी ।  
 सांभली हिवड़ो हर्ष अपार जी,  
 तीरथनाथ निकाल दियो तार जी ।  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

संसार समुद्र जाणने जी,  
 मोह कर्म कियो छार ।  
 अनित्य भावना भायने,  
 पायो केवल दर्शन सार जी ।  
 गौतम स्वामी बड़ा गणधार जी,  
 आप तिरया घणा दिया तार जी ।

जाने बन्दना बारम्बार जी,  
 जारो नाम लिया निस्तार जी ।  
 जपतां होवे खेवो पार जी,  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

कार्तिक वदी अमावस्या जी,  
 मुक्ति गया वर्धमान ।  
 गौतम स्वामी ने उमनो तब,  
 निर्मल केवलज्ञान जी ।  
 धर्म दीपायो नवर पुर ठाम जी,  
 सिद्ध कीधा आत्मकाम जी ।  
 पाया सुख अक्षय अभिसम जी,  
 स्वामी पहुँचा सिवपुर ठाम जी ।  
 बारम्बार करूँ मुण्यग्राम जी,  
 धन-धन श्री गौतम स्वाम जी ।  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....

पूज्य जयमल जी परसाद से जी,  
 कीधो ज्ञान अभ्यास ।  
 संवत अठारे चौतीस में  
 नवमी सुदि भादवा मास जी ।  
 गौतम जी ने कीधो रास जी,  
 सुणज्यो सहु चित्त उल्लास जी ।  
 पावो निल नव लील विलास जी,  
 शहर बीकानेर चौमास जी ।  
 ऋषि रायचन्द्र कियो परकास जी,  
 श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.....



## महावीर स्वामी का चौटालिया



ढाल—१

सिद्धार्थ कुलमां जी उपम्या, त्रिशला दे थारी मात जी ।  
वर्षीदान ज देई करी, संयम सीनो जगन्नाथ जी ॥

थे मन मोहो महावीर जी.....

थें मन मोहो महावीर जी, थारी कंचन वर्णीकाय जी ।  
नयन न धापे जी निरखतां, दीठा आवो छो दाय जी ॥थें०॥  
आप अकेला संयम आदर्यो, ऊपन्यो चौथे ज्ञान जी ।  
उत्कृष्ट्यो तप थें आदर्यो, धरतां निर्मल ध्यान जी ॥थें०॥  
उग्रविहार थें आदर्यो, कई वासा रह्या वनवास जी ।  
कई वासा वस्ती में रह्या, रह्या एकण ठामे चौमास जी ॥थें०॥  
प्रभु पहलो चौमासो थें किबो, अस्थिगांव मझार जी ।  
दूजो वाणीज गांव में, पंच चंपा सुखकार जी ॥थें०॥  
पांच पृष्ठचम्पा किया, विशाला नगरी में तीन जी ।  
राजगृही में चवदे किया, नालन्देपाडे लवलीन जी ॥थें॥  
छ चौमासा मिथिला किया, भद्रिका नगरी मां दोय जी ।  
एक कर्यो रे आलम्भिया, सावस्थि नगरी एक होय जी ॥थें०॥  
एक अनारज देश में, अपापा नगरी एक जाण जी ।  
एक कर्यो पावापुरी, जठे प्रभु पहींच्या निर्वाण जी ॥थें०॥



हस्तीपाल राजा इम विनवे, हुँ तुम चरणां रो दास जी ।  
 एक शाला म्हारें सूझती, आप करो चौमास जी ॥थें०॥  
 चालीस चौमासा शहर में, दाख्या दशनगरी ना नाम जी ।  
 एक अनारज देश में, एक चौमासो वलीगाम जी ॥थें०॥  
 प्रभु गाम नगर पुर विचरिया, भव्य जीवां रे भाग जी ।  
 मार्ग बतायो मोक्ष को, कियो उपकार अथाग जी ॥थें०॥  
 साढ़ा बारह बरसां लगे, ऊपर आधो मास जी ।  
 छद्मस्थ रह्या प्रभु एटला, पछे केवल ज्ञान प्रकाश जी ॥थें०॥  
 वर्ष बर्यालीस पालियो, संयम साहस धीर जी ।  
 तीस वर्ष घर मां रह्या, मोक्षदायक महावीर जी ॥थें०॥  
 पावापुरी में पधारिया, नरनारी हुआ हुल्लास जी ।  
 'ऋषिरायचन्द' इम विनवे, हुँ आयो प्रभुजी ने पास जी ॥थें०॥  
 संवत् अठारे गुण चालीस में, नागौर शहर चौमास जी ।  
 पूज्य जैमल जी के प्रसाद थी, मैं ए करी अरदास जी ॥थें०॥

ढाल—२

राग—कांची कलियां

शासननायक वीर जिनन्द, तीरथनाथ जाणे पुनमचन्द ।  
 चरणे लागे ज्यांरे चौसठ इन्द्र, सेवा करे ज्यांरी सुरनर वृन्द ॥  
 थें अब को चौमासो स्वामी जी अठे करो जी, अठे करो ३ जी ।  
 चरम चौमासो स्वामी जी अठे करोजी .....

हस्तिपाल राजा विनवे कर जोड़,  
 पूरो प्रभुजी म्हारा मनडारी कोड़ ।  
 शीश नमाय ऊभो जोड़ी जी हाथ,  
 करुणासागर वाजो कृपा जी नाथ ॥थें०॥  
 रायनी राणी विनवै राजलोक,  
 पुण्य जोगे मिल्यो सेवानो संजोग ।  
 मन वांछित सहू मिलिया जी काज,  
 में दयाकरी सामुं जोवो जिनराज ॥थें०॥

श्रावक श्राविका कई नरनार,  
मिली विनती करे बारम्बार  
पावापुरी में पधार्या वीतराग  
प्रसदी पुण्याईःम्हार मोटा जी भाग ॥थें०॥

वली हस्तिपाल राजा विनवे भूपाल,  
थें छो प्रभुजी म्हारे दीन दयाल ।  
सूझती म्हारे छे मोटी जी शाल  
लाग रह्यो प्रभु वर्षा जी काल ॥थें०॥

मानी विनती प्रभु रह्याजी चौमास,  
पावापुरी मां हूवो हर्ष उल्लास ।  
गौतम गणधर गुरांजी रे पास  
निशदिन ज्ञान रो करे जी अम्भ्यास ॥थें०॥

साधु अनेक रह्या कर जोड़,  
सेवा करे सदा होड़ा जी होड़ ।  
चवदे हजार चेला रत्नारी माल,  
दीक्षा लीधी छोड़ी भाया जंजाल ॥थें०॥

बड़ी चेली चन्दनवाला जी जाण,  
हुई कुंवारी महासती चतुर सुजाण ।  
मोत्यां नी माला छत्तीस हजार,  
संगली में बड़ी साध्वी सरदार ॥थें०॥

चारों ही संध नित्य सेवा करे,  
प्रभु जी ने देखी देखी अम्भ्या ठरे-।  
नवमल्ली ने नवलच्छी जी राय,  
ज्यारें दर्शनरी छे चित्त में चाय ॥थें०॥

लाख बत्तीस विमान को राय,  
आया पावापुरी में प्रभु कने चलाय ।  
दो सहस्र वर्षारो पडसी भस्मी जी काल,  
एक पल आउखो आघो दीजो जी टाल ॥थें०॥

वलता भाखे श्री वीर जिनन्द,  
 इण बातां रो नहीं मिले जी सम्बन्ध ।  
 हुई नहीं होवे नहीं होसी नहीं बात,  
 आऊखो नी बघे एक समय तिलमात ॥थें०॥

संघ सघला रे हुई रंग री रली,  
 पुण्य योगे प्रभुजी री सेवा भली ।  
 'ऋषि रायचन्द्र' विनवे जोड़ी हाथ,  
 थे करुणा सागर वाजो कृपाजी नाथ ॥थें०॥

नागौर शहर में कियो जी चौमास,  
 दिज्यो प्रभुजी म्हाने मुक्ति नो वास ।  
 हूँ सेबक तुम सहिब स्वाम,  
 अवर देवांसुं म्हारें नहीं कोई काम ॥थें०॥

### ढाल—३

शासन नायक श्री महावीर,  
 तीरथनाथ त्रिभुवन धणी ।  
 पावापुरी में कियो चरम चौमास,  
 हुई मोक्षदायक री महिमा घणी ॥

गौतम ने भेल दियो महावीर, देवशर्मा प्रतिबोधवा ॥टेरा॥

उत्तराध्ययन रा अध्ययन छत्तीस,  
 कार्तिक वदी अमावस्ये कहाँ ।  
 एक सौ ने बली दश अध्ययन,  
 सूत्र विपाक तणा लह्या ॥गौ०॥

पोसा कीधा श्रीवीर जी रे पास,  
 देश अठारानां राजीया ।  
 नव मल्ली ने नवलच्छी जी राय,  
 वीर ना भगता जी बाजीया ॥गौ०॥

प्रभु शासन ना सिरदार,  
सर्व संध ने सन्तोष में ।  
सोले प्रहर लग देशना दीध,  
पछे वीर विराज्या मोक्ष में ॥गौ०॥

तीन वर्ष ने साढा आठ मास,  
चौथा आरा नां बाकी रह्या ।  
दिन दोय तणो संधार,  
मीन रही मुगते गया ॥गौ०॥

इन्द्र आव्या जी चित्त उदास,  
देव देवी ना साथ में ।  
जाणे जगमग लग रही ज्योत,  
अमावस्या नी रात में ॥गौ०॥

मुगति पहुँच्या एकाएक,  
सात से हुआ ज्यारे केवली ।  
चवदह सौ साध्वियाँ हुई सिद्ध,  
हैं सहुँ ने वंद् मन रली ॥गौ०॥

रह्या तीस वर्ष घर मांय,  
वर्ष बैयालीस संयम पालियो ।  
प्रभु जगतारणा जगदीश,  
दयामार्ग उजबालियो ॥गौ०॥

होजी देव, देवी ने क्ली इन्द्र,  
निर्वाण तणो महोत्सव कियो ।  
अरिहंत नो पडियो वियोग,  
सुर नर नो भरियो हियो ॥गौ॥

साधु साध्वी करता शोक,  
श्रावक श्राविका पण घणा ।  
भरत क्षेत्र मां पडियो वियोग,  
आज पछी अरिहंत तणो ॥गौ०॥

पंछी बैठा सुधर्मा स्वामी पाट,  
चारों ही संघ चरण सेवता ।  
ज्यांरी पालता अखण्डित आण,  
सेवा करे देवी ने देवता ॥गौ०॥

मुगते पहोंच्या श्री महावीर,  
प्रभु सुख पाम्या छे शाश्वता ।  
'ऋषिरायचन्द' कहे एम,  
म्हारे अरिहंत वचन की आसता ॥गौ०॥

## ढाल—४

## राग—चढो-चढो लाड़ा वार म लावो

गुरांजी थे मने गोडे न राख्यो, मुगति जावण रो नाम न दाख्यो ॥टेरा॥

श्री महावीर पहोंच्या निर्वाणी ।  
गौतम स्वामी ए बात ज जाणी ॥गु०॥

हूँ सगला पहेलां हुवो थारो चेलो ।  
इण अवसर आघो किम मेल्यो ॥गु०॥

प्रभु तुम चरणें म्हारो चित्त लागो ।  
आप पहुँता निर्वाण मने मेल दियो आगो ॥गु०॥

मने आपरा दर्शन लागता प्यारो ।  
आप पहोंच्या निर्वाणमने मेल दियो न्यारो ॥गु०॥

आप तो मुझ सून अन्तर राख्यो ।  
पिण मैं म्हारा मन रो दर्द न दाख्यो ॥गु०॥

हूँ आड़ो माँडी नहीं झालतो पल्लो ।  
पण शाबास काम कियो तुम भल्लो ॥गु०॥

हूँ तुमने अन्तराय न देतो ।  
मुगती में जागा बहेंची नहीं लेतो ॥गु०॥

हूँ संकड़ाई न करतो काँई ।  
आप साथे हूँ मोक्ष में आई ॥गु०॥

अब हूँ पूछा करसुं -किण आगे ।  
 प्रभु म्हारो मन एक थासुं ही लागे ॥गु०॥  
 म्हारो साँसो कहो कुण टाले ।  
 आप बिना पाखण्डी ना मद कुण गाले ॥गु०॥  
 हुँता चौदे पूरब ने चीनाणी ।  
 पिण मोहनीय कर्म लपेट्यो आणी ॥गु०॥  
 ऐसो गौतम स्वामी कियो बिलापात ।  
 ए मोहनी कर्म नी अचरज बात ॥गु०॥  
 हवे मोहनीय कर्म दूरे टाली ।  
 गौतम स्वामी ए सुरती संभाली ॥गु०॥

राग—वीतराग राग द्वेष ने जीत्या ॥टेरा॥

वीतराग राग द्वेष ने जीत्या ।  
 म्हाराँ चित्त माँ आई गई चिन्ता ॥वी०॥  
 तिण बेला निर्मल ध्यान ज ध्यायो ।  
 केवल ज्ञान गौतम स्वामी पायो ॥वी०॥  
 बारावर्ष रह्या केवलज्ञानी ।  
 बात ज्याँसु कोई नहीं रही छानी ॥वी॥  
 गौतम पण कियो मुक्ति में वासो ।  
 संसार नो सर्व देखे तमासो ॥वी०॥  
 जणी राते मुक्ति गया वद्धमान ।  
 इन्द्रभूति ने उपन्यो केवलज्ञान ॥वी॥  
 तिण दिन थी ए बाजी दिवाली ।  
 म्होटो दिन ए मंगल माली ॥वी०॥  
 रात दिवाली नो शियल थें पालो ।  
 वली रात्रि भोजन नो कर दो टालो ॥वी०॥  
 'ऋषि रायचन्द' कहे सुणो हो सुज्ञानी ।  
 दया रूप दिवाली थें लेज्यो मानी ॥वी०॥

## कलश—

श्री शासन नायक, मुक्ति दायक,  
 दया मार्ग उज्जवालियो ।  
 श्री गौतम स्वामी, मुक्तिगामी,  
 कियो चित्तवल्लभ चोढालियो ॥  
 संवत् अठारे, गुण चालीसे  
 नागौर चौमासो निर्मल मने ।  
 पूज्य जेमल जी प्रसादे,  
 पूर्ण कियो दिवाली रे दिने ॥



